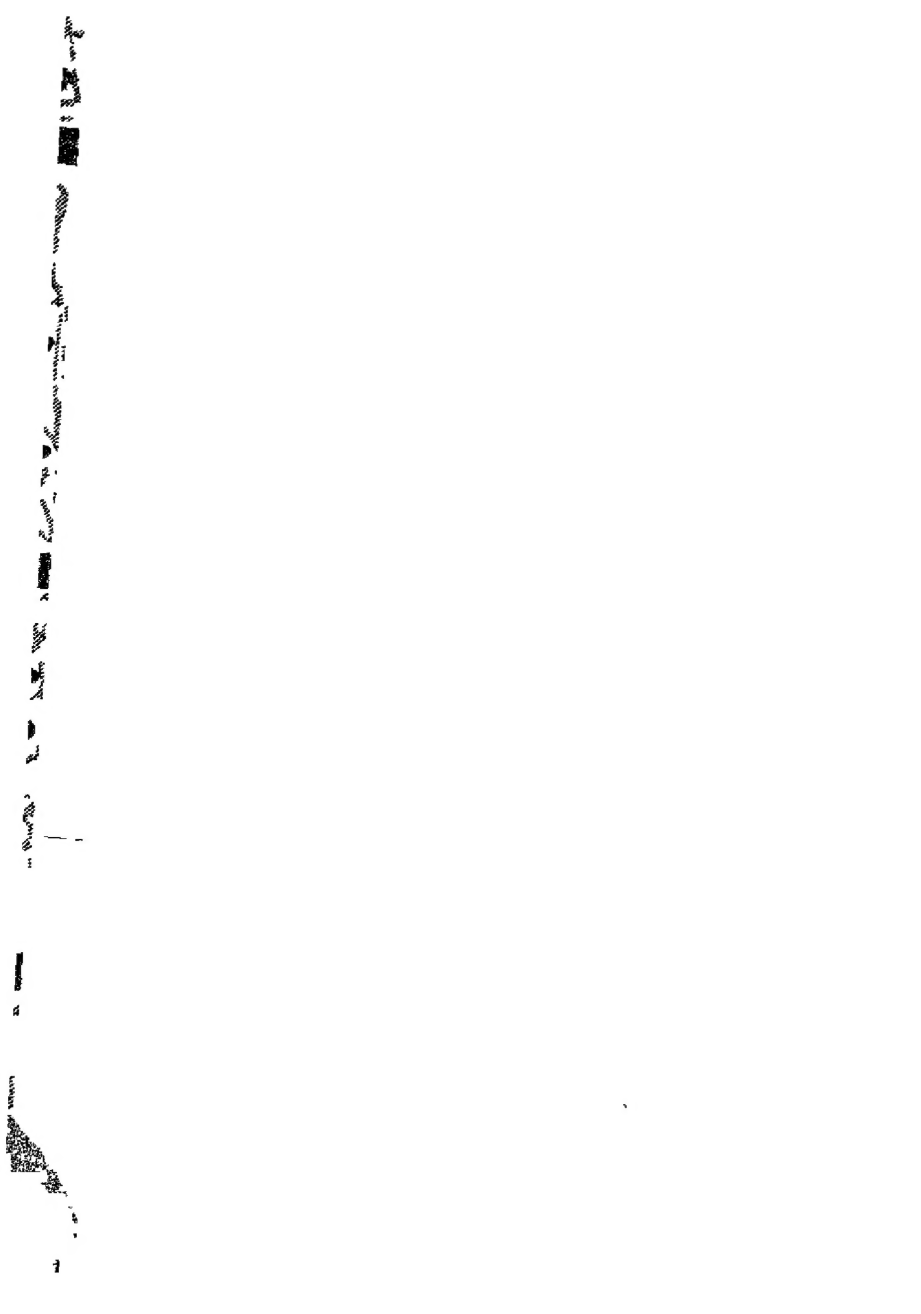
क्षणदा

महादेवी वर्मा







सरदार पूर्णसिंह अध्यापक के निबन्ध

सम्पादक

प्रभात शास्त्री

साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

भूमिका-लेखक

डा० हरवंशलाल शर्मा, एम० ए०, पीएच्० डी०, डी० लिट०

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

मुस्लिम युनिवर्सिटी अलीगढ़

प्रकाशक

कौशाम्बी-प्रकाशन

दारागंज, इलाहाबाद–६

मूल्य—

दो रुपये पचास पैसे

पुनर्मुद्रण

संवत् २०२४ वि०

मुद्रक :

सरयू प्रसाद पांडेय

नागरी प्रेस दारागंज इलाहाबाद।

पूज्य पिता

पण्डित गङ्गाप्रसाद जी मिश्र

को

श्रद्धासमेत

क्रम



निबन्धकार एवं कवि पूर्णसिंह



जन्म और शिक्षा

प्राकृतिक दृश्यों, पहाड़ियों और झरनों से सुहावनी सीमाप्रान्त की भूमि में, *एबटाबाद* से पाँच मील दूर *सलहड* गाँव मे, मिट्टी के बने मकान में एक सिख परिवार रहता था जिसका मुख्य पुरुष सरकारी नौकरी करके और माँ-बहनें चरखा कातकर गृहस्थी के साधन जुटाते थे। परिवार वित्त-हीन था, पर उसके प्राणी आत्मसम्मान, ईश्वर-प्रेम, उदारता तथा अन्य मानवीय गुणों से भरे हुए थे, एक तरह से कर्मठता उनका व्यवसाय था और प्रेम ही उनका धन था। ऐसे ही परिवार में मेधावी लेखक पूर्णसिंह का जन्म संवत् १९३८ वि० में हुआ। आगे चलकर ये अपने परिवार और इस वातावरण के अनुरूप ही मजदूरों और किसानों पर प्राण निछावर करने वाले रहस्यवादी कवि और वेदान्ती व्यक्तित्व के रूप में सामने आये। तथा अंग्रेजी, पंजाबी एवं हिन्दी—तीन भाषाओं में अमर साहित्य का प्रणयन किया।

पूर्णसिंह के पिता एक छोटे सरकारी अफसर थे और नौकरी ऐसी थी कि वर्ष का अधिकांश सीमा प्रान्तीय पहाड़ी प्रदेशों के दौरा करने मे ही व्यतीत हो जाता था। इस कारण वे पुत्र की शिक्षा-दीक्षा की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाते थे। गावों में पठानों की आबादी बहुत होने पर भी शिक्षा की व्यवस्था नहीं के बराबर थी। यह बात इनकी माँ को अधिक खटकती रही। अतः वे इनकी शिक्षा के लिए इन्हें लेकर पंजाब प्रान्त के रावलपिंडी जिले में चली गयीं, यहाँ इनके रिश्तेदार

क्रम



निबन्धकार एवं कवि पूर्णसिंह



प्राकृतिक दृश्यों, पहाड़ियों और झरनों से सुहावनी सीमाप्रान्त की भूमि में, एबटाबाद से पाँच मील दूर सलहड गांव में, मिट्टी के बने मकान में एक सिख परिवार रहता था जिसका मुख्य पुरुष सरकारी नौकरी करके और माँ-बहनें चरखा कातकर गृहस्थी के साधन जुटाते थे। परिवार विभव-हीन था, पर उसके प्राणी आत्मसम्मान, ईश्वर-प्रेम, उदारता तथा अन्य मानवीय गुणों से भरे हुए थे, एक तरह से कर्मठता उनका व्यवसाय था और प्रेम ही उनका धन था। ऐसे ही परिवार में मेधावी लेखक पूर्णसिंह का जन्म संवत् १९३८ वि० में हुआ। आगे चलकर ये अपने परिवार और इस वातावरण के अनुरूप ही मजदूरों और किसानों पर प्राण निछावर करने वाले रहस्यवादी कवि और वेदान्ती व्यक्तित्व के रूप में सामने आये। तथा अंग्रेजी, पंजाबी एवं हिन्दी—तीन भाषाओं में अमर साहित्य का प्रणयन किया।

जन्म और शिक्षा

पूर्णसिंह के पिता एक छोटे सरकारी अफसर थे और नौकरी ऐसी थी कि वर्ष का अधिकांश सीमा प्रान्तीय पहाड़ी प्रदेशों के दौरा करने में ही व्यतीत हो जाता था। इस कारण वे पुत्र की शिक्षा-दीक्षा की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाते थे। गावों में पठानों की आबादी बहुत होने पर भी शिक्षा की व्यवस्था नहीं के बराबर थी। यह बात इनकी माँ को अधिक खटकती रही। अतः वे इनकी शिक्षा के लिए इन्हें लेकर पंजाब प्रान्त के रावलपिंडी जिले में चली गयीं, यहाँ इनके रिश्तेदार

क्रम



निबन्धकार एवं कवि पूर्णसिंह



प्राकृतिक दृश्यों, पहाड़ियों और झरनों से सुहावनी सीमाप्रान्त की भूमि में, एबटाबाद से पाँच मील दूर सलहड गाँव में, मिट्टी के बने मकान में एक सिख परिवार रहता था जिसका मुख्य पुरुष सरकारी नौकरी करके और माँ-बहनें चरखा कातकर गृहस्थी के साधन जुटाते थे। परिवार वित्त-हीन था, पर उसके प्राणी आत्मसम्मान, ईश्वर-प्रेम, उदारता तथा अन्य मानवीय गुणों से भरे हुए थे, एक तरह से कर्मठता उनका व्यवसाय था और प्रेम ही उनका धन था। ऐसे ही परिवार में मेधावी लेखक पूर्णसिंह का जन्म संवत् १९३८ वि० में हुआ। आगे चलकर ये अपने परिवार और इस वातावरण के अनुरूप ही मजदूरों और किसानों पर प्राण निछावर करने वाले रहस्यवादी कवि और वेदान्ती व्यक्तित्व के रूप में सामने आये। तथा अंग्रेजी, पंजाबी एवं हिन्दी—तीन भाषाओं में अमर साहित्य का प्रणयन किया।

जन्म और शिक्षा

पूर्णसिंह के पिता एक छोटे सरकारी अफसर थे और नौकरी ऐसी थी कि वर्ष का अधिकांश सीमा प्रान्तीय पहाड़ी प्रदेशों के दौरा करने में ही व्यतीत हो जाता था। इस कारण वे पुत्र की शिक्षा-दीक्षा की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाते थे। गावों में पठानों की आबादी बहुत होने पर भी शिक्षा की व्यवस्था नहीं के बराबर थी। यह बात इनकी माँ को अधिक खटकती रही। अतः वे इनकी शिक्षा के लिए इन्हें लेकर पंजाब प्रान्त के रावलपिंडी जिले में चली गयीं, यहाँ इनके रिश्तेदार

भी रहते थे। यहीं के एक स्कूल में इनका नाम लिखा दिया गया इनकी देख-रेख के लिए इनकी माता भी वहीं साथ रहा करती थी पूर्णसिंह के पिता जैसे आध्यात्मिक प्रकृति के थे, इनकी माता भी वैसी ही धार्मिक और उदार स्वभाव की थी। माता-पिता की इस प्रकृति का प्रभाव पुत्र पर बहुत पड़ा। माता की संरक्षता में रहकर इन्होंने रावलपिंडी के स्कूल में हाईस्कूल तक शिक्षा पायी। फिर ये विशेष अध्ययन के उद्देश्य से पंजाब की तत्कालीन राजधानी लाहौर आ गये और यहां के एक कालेज में नाम लिखा कर १८ वर्ष की अवस्था में इन्टर की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली।

पूर्णसिंह बचपन से ही बड़े उत्साही और भावुक आत्मा थे। ये विद्यार्थी-जीवन में शिक्षा के अतिरिक्त अन्य कार्य-क्रमों में भी बड़ी लगन से भाग लिया करते थे। एक बार आहुलीवालिया खालसा बिरादरी की सभा हो रही थी; पूर्णसिंह की अवस्था तब केवल १३ वर्ष की थी, ये सभा के भाषणों को सुनकर किसी कारण-वश भावना के जोश में आ गये और सभापति से भाषण देने की आज्ञा लेकर इन्होंने एक जोशीला भाषण दिया। एक बालक का ऐसा ओजस्वी भाषण सुनकर श्रोताजन अवाक् रह गये। उसी से प्रभावित होकर सरदार बहादुर बूटासिंह ने एक फंड खोला, जिसकी सहायता से पूर्णसिंह जैसे मेधावी छात्र विदेशों में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें। अतः जब पूर्णसिंह ने इन्टर पास कर लिया तब इन्हें उस धन से विदेश जाकर अध्ययन करने की सुविधा प्राप्त हो गयी। इन्होंने सम्वत् १९५७ में जापान की यात्रा की, वहाँ टोकियो नगर में स्थित इम्पीरियल युनिवर्सिटी के छात्र हो गये। बड़ी लगन के साथ तीन वर्ष तक इन युनिवर्सिटी के छात्र रहकर इन्होंने व्यावहारिक रसायनशास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया।

जापान पहुँचकर इनका प्रेमपूर्ण जीवन और भी अधिक गतिमान हो उठा, टोकियो में उस समय इन्डो-जापानी क्लब नाम की एक संस्था थी जिसमें भारतीय और जापानी विद्यार्थी काफी संख्या में रहा करते थे, इस संस्था के पूर्णसिंह मंत्री थे। इनके ऊपर जापानियों की सरसता और उनके कुसुम-कोमल प्रेमभाव का बड़ा प्रभाव पड़ा, जापान के शांति-आनन्द के उपासक अनेक व्यक्तियों, कवियों और कलाकारों से इनका परिचय हुआ, साथ ही वहाँ के बुद्ध धर्म का इनके ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। जापान में हाथ के कला कौशल को देखकर ये मुग्ध हो उठे और हाथ से किये जानेवाले श्रम के प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा हो गयी। कुल मिलाकर इन्होंने कर्म और भावना; जीवन और अध्यात्म दोनों दृष्टियों के एक नवीन आनन्द का अनुभव किया।

जापान-प्रवास और संन्यास-दीक्षा

तब तक इस बीच एक घटना घटी। इसी समय जापान में पार्ल्यामेन्ट आॅव रिलिजन होनेवाली थी, उसमें भाग लेने के लिए *स्वामी रामतीर्थ जी* जापान आये हुए थे। स्वामी जी उस इन्डो-जापानी क्लब में भारतीय विद्यार्थियों से मिलने आये और वहीं पर इनसे स्वामी जी की प्रथम भेंट हुई। इस प्रथम भेंट में इन्होंने अपने दार्शनिक वार्तालाप से स्वामी जी को अत्यधिक प्रभावित कर लिया। उसी दिन इनका बुद्धिस्ट (Buddist) युनिवर्सिटी में भाषण होनेवाला था, इन्होंने स्वामी जी से आग्रह किया कि आप भी मेरे साथ वहाँ चलें। इनकी प्रार्थना पर स्वामी जी तैयार हो गये और पूर्णसिंह के साथ स्वामी जी का भी भाषण हुआ। स्वामी जी के प्रथम भाषण का इनके ऊपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि ये उनके सच्चे शिष्य बनने के साथ ही अपनी रसायन-शास्त्र की पुस्तकें फेंककर जापान में ही संन्यासी हो गये।

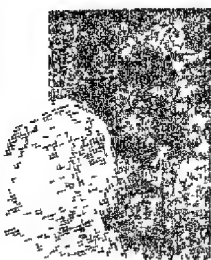
स्वामी रामतीर्थ के प्रभाव का वर्णन इन्होंने अपने आत्मचरित में बड़ी निष्ठा के साथ किया है—

"इसी समय जापान में एक भारतीय सन्त से जो भारत से आये थे मेरी भेंट हो गयी। उन्होंने एक ईश्वरीय ज्योति से मुझे स्पर्श किया और मैं संन्यासी हो गया। लेकिन मैं देखता हूँ कि उन्होंने मेरे हृदय में और भी अनेकों भाव, जिनके लिए भारत के आधुनिक सन्त बहुत व्यग्र हैं, भर दिये—जैसे भारत की महत्ता को जाग्रत करना, राष्ट्र का निर्माण और कर्मठ बनाना, यद्यपि मैं जीवन के पचड़ों में आकर्षित नहीं होता था तथापि जिसने मुझे आत्मज्ञान की इतनी बातें बतायीं उसकी आज्ञा शिरोधार्य करके और अपनी रसायन शास्त्र की पुस्तकें फेंक फांक कर मैं भारत की ओर चल पड़ा। उस समय सब बातों को देखते हुए मुझे महान् धर्म की प्राप्ति तथा उच्च जीवन की उच्च प्रगति के लिए अपने देश की अपेक्षा जापान अधिक उपयुक्त जान पड़ा, लेकिन मैं क्या करता? उस हिन्दू संन्यासी ने जिस प्रचण्ड वाग्मिता के साथ मुझ में बिजली भरी थी, उससे प्रेरित होकर मैं मधुर स्वप्नों और आशाओं से भरा हुआ भारत-वर्ष आ पहुँचा।"

संन्यासी पूर्णसिंह, एक जापानी विद्यार्थी के साथ

बाद में भारत आकर ये स्वामी जी के साथ संन्यासी वेश में

घूमने लगे। ये कलकत्ता में संन्यासी वेश में घूम रहे थे, संसार मात्र ही इनका अपना घर था, अपने देश लौटने पर इन्हें अपने माता-पिता के वात्सल्य की तनिक भी याद न आयी, न घर जाने के लिए इनके हृदय में विचार पैदा हुआ; उसी समय बूढ़े माता-पिता को इनके विदेश से लौटने और कलकत्ता रहने का समाचार मिला और वे कलकत्ता आ पहुँचे। पूर्णसिंह को इनकी माता और बहनें बहुत प्यार करती थी लेकिन उस समय माता के अटूट प्रेम से भी संन्यासी



न से लौटने के बाद
न्यासी पूर्णसिंह

ा हृदय प्रभावित न हुआ। इससे माता को दुःख हुआ किन्तु का साथ न छोड़ा और दो-तीन दिन के बाद पुत्र को घर लिए राजी कर लिया। पूर्णसिंह जी जब घर लौटे, चाँदनी चाँदनी में भगवा वस्त्र पहने जब ये घर के आँगन में ए तब माता के संकेत करने पर भी इनकी बहनें इन्हें सकी, इनके दो नन्हें मुन्ने छोटे भाई इनको टकटकी देखते रहे। भगवा वेश में भाई को देखकर बहनों को आ और जब उन्होंने भाई को पहचान लिया, प्रेम की ी धारा उनकी आँखों से बह चली किन्तु उस समय पूर्णसिंह से आँसू न निकले।

स्वामी रामतीर्थ के प्रभाव का वर्णन इन्होंने अपने आत्मचरित में बड़ी निष्ठा के साथ किया है—

"इसी समय जापान में एक भारतीय सन्त से जो भारत से आये थे मेरी भेंट हो गयी। उन्होंने एक ईश्वरीय ज्योति से मुझे स्पर्श किया और मैं संन्यासी हो गया। लेकिन मैं देखता हूँ कि उन्होंने मेरे हृदय में और भी अनेकों भाव, जिनके लिए भारत के आधुनिक सन्त बहुत व्यग्र हैं, भर दिये—जैसे भारत की महत्ता को जाग्रत करना, राष्ट्र का निर्माण और कर्मठ बनाना, यद्यपि मैं जीवन के पचड़ों में आकर्षित नहीं होता था तथापि जिसने मुझे आत्मज्ञान की इतनी बातें बतायीं उसकी आज्ञा शिरोधार्य करके और अपनी रसायन शास्त्र की पुस्तकें फ़ेंक फांक कर मैं भारत की ओर चल पड़ा। उस समय सब बातों को देखते हुए मुझे महान् धर्म की प्राप्ति तथा उच्च जीवन की उच्च प्रगति के लिए अपने देश की अपेक्षा जापान अधिक उपयुक्त जान पड़ा, लेकिन मैं क्या करता? उस हिन्दू संन्यासी ने जिस प्रचण्ड वाग्मिता के साथ मुझ में बिजली भरी थी, उससे प्रेरित होकर मैं मधुर स्वप्नों और आशाओं से भरा हुआ भारतवर्ष आ पहुँचा।"

संन्यासी पूर्णसिंह, एक जापानी विद्यार्थी के साथ

बाद में भारत आकर ये स्वामी जी के साथ संन्यासी वेश में

न घूमने लगे। ये कलकत्ता में संन्यासी वेश में घूम रहे थे, संसार मात्र ही इनका अपना घर था, अपने देश लौटने पर इन्हें अपने माता-पिता के वात्सल्य की तनिक भी याद न आयी, न घर जाने के लिए इनके हृदय में विचार पैदा हुआ; उसी समय बूढ़े माता-पिता को इनके विदेश से लौटने और कलकत्ता रहने का समाचार मिला और वे कलकत्ता आ पहुँचे। पूर्णसिंह को इनकी माता और बहनें बहुत प्यार करती थीं लेकिन उस समय माता के अटूट प्रेम से भी संन्यासी



.न से लौटने के बाद
संन्यासी पूर्णसिंह

ा हृदय प्रभावित न हुआ। इससे माता को दुःख हुआ किन्तु ़का साथ न छोड़ा और दो-तीन दिन के बाद पुत्र को घर लिए राजी कर लिया। पूर्णसिंह जी जब घर लौटे, चाँदनी चाँदनी में भगवा वस्त्र पहने जब ये घर के आँगन में ़ए तब माता के संकेत करने पर भी इनकी बहनें इन्हें सकीं, इनके दो नन्हें मुन्ने छोटे भाई इनको टकटकी देखते रहे। भगवा वेश में भाई को देखकर बहनों को हुआ और जब उन्होंने भाई को पहचान लिया, प्रेम की ी धारा उनकी आँखों से बह चली किन्तु उस समय पूर्णसिंह से आँसू न निकले।

पूर्णसिंह के घर आने के बाद ही इनकी छोटी बहन *गंगा* बहुत बीमार पड़ी। अभी उन्हें आये पन्द्रह दिन ही बीते थे और उसके अन्तिम दिन निकट दीखने लगे। बहन ने प्रेम में भर कर भाई से अपनी अन्तिम इच्छा तथा अनुरोध प्रकट किया कि वह उस लड़की से विवाह कर लें, जिसके साथ उनका पूर्व निश्चय हो चुका है। पूर्णसिंह ने बहन का अनुरोध मान लिया और संवत् १९६२ में इनका विवाह *भगत जवाहर मल्ल* की पुत्री *मायादेवी* के साथ सम्पन्न हो गया। सौभाग्य से इनकी स्त्री भी इन्हीं की तरह बड़े साधु गुणोंवाली थीं। वह पूर्णसिंह के जीवन में दूसरा परिवर्तन था, लेकिन उनका भावुकपन और सांसारिक वैराग्य कम न हुआ। इनके विवाह के कुछ दिनों बाद *स्वामी रामतीर्थ* की मृत्यु हो गयी, उनकी मृत्यु ने इनके जीवन को बहुत उदासीन बना दिया, प्रायः ये उस उदासी में रात की रात जागकर बिता देते थे।

विवाह और नौकरी

उसी समय इनकी नियुक्ति लाहौर के विक्टोरिया डायमंड जुबली हिन्दू टेक्निकल इंस्टीट्यूट के प्रिंसिपल पद पर हो गयी। वहाँ भी इन्होंने अपने अनोखे ढंग के ओजस्वी भाषणों तथा अपनी विद्वत्ता से लोगों को बहुत प्रभावित किया।

पूर्णसिंह बहुत ही ऊँची प्रतिभा के व्यक्ति थे। धीरे-धीरे इनकी योग्यता की ख्याति फैलने लगी। शीघ्र ही संवत् १९६३ में *देहरादून* के इम्पीरियल फोरेस्ट *रिसर्च* इन्स्टीट्यूट में ५००) मासिक पर वे बुला लिये गये। पर अपने फक्कड़ स्वभाव और स्वामी रामतीर्थ के आध्यात्मिक विचार धारा से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण इनके वेतन का आधा हिस्सा साधु-सन्तों के सत्कार और

मे ही व्यय हो जाता था। यहाँ रासायनिक के पद प रहते हुए उन्होंने कई जंगल तेलो की नयी खोज और आविष्कार किया, जो उस समय काफी चर्चा के विषय बने रहे। इनकी रासायनिक रिपोर्टें भी बडी मौलिक होती थी।

ध्यापक पूर्णसिंह

जब ये देहरादून में अध्यापक थे उसी समय संवत् १९६९ में स्यालकोट में सिखविधायक कान्फ्रेंस हुई। उसमें पूर्णसिंह भी गये हुए थे और वहाँ पर इनकी भेंट पंजाबी के प्रसिद्ध वीरसिंह से हुई। उनसे मिलकर ये बहुत प्रभावित हुए और उनके ऊपर श्रद्धालु होकर उन्हीं के प्रभाव से पुनः सिख-मंडल में आ गये। तब से अन्त तक सिखधर्म में बने रहे। सिखधर्म में दीक्षित होने के साथ ही इनका पहले का वह वेदान्त-पूर्ण लोकोत्तर बदल गया; ये ईश्वर के भक्त, सन्त दयार्द्र और वात्सल्यपूर्ण नानक, ईसा और बुद्ध के उपासक के रूप में दृष्टिगोचर। भाई वीरसिंह की कविताओं पर ये इतने मुग्ध हुए कि उनका बड़ा सुन्दर अनुवाद अंग्रेजी में किया।

सिख-
ई में

उ समय ये इन्स्टीट्यूट में अध्यापक थे उसी समय उत्तर क्रान्तिकारी आन्दोलन का काफी जोर था। परिणाम-

स्वरूप स्वामी रामतीर्थ के परमभक्त और इनके गुरुभाई मास्टर अमीरचन्द 'देहली-षड्यंत्र' के मुकदमे में सरकार

एक मानसिक धक्का

द्वारा पकड़ लिये गये। बाद में पुलिस को पता चला कि अमीरचन्द के घर में पूर्णसिंह भी आया जाया करते थे, इस कारण पुलिसवालों ने इस मुकदमे में इनकी भी पेशी कर दी। यह बात कटु सत्य थी कि इनका और मास्टर साहब का घनिष्टतम सम्बन्ध था। देहली-यात्रा में ये प्रायः उन्हीं के घर ठहरा भी करते थे। इस दशा में पूर्णसिंह के सामने धर्म-संकट उपस्थित हो गया। ये किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये और अपना कोई विचार स्थिर न कर सके। मुकदमा बहुत गम्भीर था। इधर इनके शुभचिंतकों को यह शंका हुई कि यदि सरदार साहब ने भावना और भावुकता के आवेश में आकर अदालत के सामने अमीरचन्द से अपना सम्बन्ध अणुमात्र भी स्वीकार किया तो ये भी इस जाल में लपेट उठेंगे। इसीलिए उन लोगों ने इन्हें *मास्टर अमीरचन्द* से किसी दशा में भी किसी प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार न करने के लिए सावधान किया। अपने साथियों और सम्बन्धियों के समझाने-बुझाने का सरदार पूर्णसिंह के ऊपर प्रभाव पड़ गया और इन्होंने न्यायालय के सामने मास्टर अमीरचन्द से अपना किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं स्वीकार किया, यद्यपि यह सब इनकी आत्मा के नितान्त विपरीत था। अस्तु, किसी तरह इस मुकदमे में इन्हें छुटकारा तो मिल गया किन्तु मास्टर अमीरचन्द को फाँसी की सजा हो गयी। अतः इस घटना से न्यायप्रिय पूर्णसिंह को बहुत भयङ्कर मानसिक धक्का लगा और ये प्रायः उदास रहने लगे। यह घटना संवत् १९७१ (अक्टूबर सन् १९१४) की है।

इसके तीन वर्ष बाद इनके जीवन में दूसरी घटना घटी। पूर्णसिंह

स्वभाव से ही स्वाभिमानी और स्वतन्त्रचेता व्यक्ति थे। इन्हें अपने कार्यों में कभी किसी का हस्तक्षेप जरा भी पसन्द नहीं था। इसी कारण इम्पीरियल फॉरेस्ट इन्स्टीट्यूट के अधिकारियों से इनका मतभेद रहने लगा। धीरे-धीरे इनके और वहाँ के अधिकारियों के बीच का मतभेद उग्ररूप में परिणत हो गया। अन्त में संवत् १९७४ (सन् १९१७) में इन्होंने इन्स्टीट्यूट की नौकरशाही से त्यागपत्र दे दिया। फिर कुछ समय बाद ये ग्वालियर राज्य के प्रधान रासायनिक नियुक्त हुए, जहाँ ये चार वर्ष तक रहे। वहाँ रहकर सिखों के दस गुरुओं की जीवन-सम्बन्धी 'दि बुक ऑव टेन मास्टर्स'[1] तथा स्वामी रामतीर्थ की जीवनी 'दि स्टोरी ऑव स्वामी राम'[2] ये दो पुस्तकें लिखीं। फिर इनका मन वहाँ नहीं लगा। बात यह थी कि ग्वालियर के महाराज ने इनको बुलाया था और चार लाख रुपया लगाकर एक नया कारखाना चलाने की योजना बनायी थी जिसमें वनस्पति-सम्बन्धी तथा अन्य बहुत सी वस्तुएँ तैयार की जातीं। चार वर्ष के भीतर पूर्णसिंह को इस योजना की सफलता प्रकट करनी थी किन्तु महाराज के दरबारियों ने पहले से ही कान भरने शुरू कर दिये कि यह चार लाख रुपया पानी में डूब रहा है। महाराज उनकी बातों में आ गये और उन्होंने सरदार पूर्णसिंह से रुपये का हिसाब माँगा, सरदार साहब को इससे बड़ी खीझ हुई और इन्होंने महाराज के सामने लाभ स्वरूप, चार लाख रुपये ले आकर पटक दिये। फिर तो इन्होंने ग्वालियर छोड़ दिया और बाद में महाराज के बहुत बुलाने पर भी न गये।

नौकरी से विराम

---

१. सिख युनिवर्सिटी प्रेस, निस्बत रोड, लाहौर।

२. रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

पुनः इन्होंने स्वतन्त्र उद्योग करने की बात सोची। संवत् १६८३ में पंजाब के जड़ाँवाला स्थान में इन्होंने कई एकड़ जमीन ठेके पर ली और उसमें एक विशेष प्रकार की घास बोने की खेती शुरू की, जिससे तेल निकाला जाता। इस योजना में सरदार साहब ने बहुत पैसा खर्च किया किन्तु संवत् १६८५ में एक भारी बाढ़ आयी और सारी फसल पानी में डूब गयी तथा बह कर नष्ट हो गयी। अपनी योजना की यह विनाश-लीला देखकर पूर्णसिंह एक विशेष भाव में मस्त हो गये और छत पर चढ़कर आत्मानन्द में मग्न होकर नाच-नाच कर गाने लगे—

भला होया मेरा चर्खा टुटा
जिंद अजाबें छुटी।

[अर्थात् अच्छा हुआ जो चर्खा टूट गया और जीवन संकट से मुक्त हुआ।]

अब सरदार पूर्णसिंह अर्थ-संकट से बहुत परेशान थे और इनके ऊपर काफी ऋण हो गया था। इसी परेशानी की हालत में संवत् १६८७ (सन् १६३०) मे नौकरी ढूंढ़ने के लिए लखनऊ आये पर दुर्भाग्यवश इन्हें नौकरी नहीं मिली। इनके जीवन का विकास जैसे फकीरी विचारों के साथ हुआ था जैसे ही फकीरी हालत में जीवन के अन्तिम दिन बीते। लखनऊ में नौकरी न मिलने के कारण इस महान मेधावी कलाकार की मनोदशा कैसी थी, इसका चित्रण, इनके मित्र तथा स्वामी रामतीर्थ के शिष्य स्वामी नारायणानन्द ने 'दि स्टोरी ऑव स्वामी राम' की भूमिका में करते हुए लिखा है—"जब १६३० में उनकी भेंट मुझसे लखनऊ में हुई तो वे नौकरी की तलाश में घूम रहे थे। वास्तव में वे गार्हस्थ्य

जीवन के अन्तिम दिन

जीवन से ऊब गये थे और फिर उसमें जाने की इच्छा नहीं बात तो यह है कि वे सांसारिक और गार्हस्थ्य जीवन के बिलकुल थक गये थे।"

वैसे तो कई वर्ष से पूर्णसिंह गठिया से पीड़ित थे और दिनोदिन बढ़ता जा रहा था किन्तु संवत् १९८७ में सयोग मित्र के साहचर्य से इन्हें राजयक्ष्मा का रोग हो गया। उसका कारण था, पूर्णसिंह जी किसी से कोई अलगाव नहीं रखते थे और सबको भाई साहब कहकर गले लगाकर मिलते थे। ऐसे ही राजयक्ष्मा के रोगी एक मित्र के सहवास से इन्हें भी वह रोग हो गया। जिन दिनों ये नौकरी खोज रहे थे, इनकी हालत उस रोग से दिनोंदिन गिरती जा रही थी, आर्थिक-संकट में रोग का उपचार भी ठीक ढंग से नहीं हो सकता था। इनकी माता तो संवत् १९७५ में ही मर चुकी थीं किन्तु पिता उस समय जीवित थे अवस्था नब्बे वर्ष की थी। पुत्र की दर्दनाक बीमारी का इन्हे नहीं सुनाया गया लेकिन किसी तरह उन्हें इसकी खबर मि



सरदार पूर्णसिंह
मृत्यु के छह मास पूर्व

तब वे इस असहनीय वेदना को न सह सके और इसी दुःख में दूसरे दिन उनकी मृत्यु हो गयी, ऐसी ही संकटपूर्ण परिस्थिति में चैत्र शुक्ल १२ संवत् १६८८ (३१ मार्च सन् १६३१) को अपने निवास-स्थान देहरादून में वीणापाणि का यह भावुक और प्रतिभाशाली उपासक चल बसा। इस समय इनकी अवस्था ५० वर्ष की थी।

पूर्णसिंह के तीन पुत्र और एक पुत्री, ये चार संतानें थीं। बड़े लड़के *सरदार मनमोहन सिंह* सब-जज थे। इस समय वे अवकाश का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। छोटे लड़के का नाम सरदार *निरलेप सिंह* है।

पूर्णसिंह का व्यक्तित्व

पूर्णसिंह जैसा कहते और लिखते थे, ये उसे जीवन के व्यवहार में उससे भी अधिक कर दिखानेवाले आदमियों में थे, इनकी दृष्टि, वाणी और उपस्थिति मात्र से दया और प्रेम बरसता था, एक बार भी जो इनके सम्पर्क में आता था, इनके प्रेम से ऐसा भींग उठता था कि कभी इन्हें भूल नहीं सकता था। सृष्टिमात्र में इन्हें ईश्वर के प्रेम की झलक मिलती थी और जब कभी एकाग्र होकर ये उस चिन्तन में लग जाते थे तो इनकी आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बह चलती थी। हाथ से मजदूरी करनेवाले और धरती में परिश्रम कर कमानेवाले मजदूरों और किसानों के ऊपर इनके प्राण निछावर थे। इसकी अभिव्यक्ति थोड़े हेर-फेर के साथ इन्होंने अपने निबन्धों में कई जगह की है। 'आचरण की सभ्यता' में एक जगह लिखते हैं—"मैं तो अपनी खेती करता हूँ, अपने हल और बैलों को प्रातःकाल उठकर प्रणाम करता हूँ, मेरा जीवन जंगल के पेड़ों और पक्षियों की सङ्गति में गुजरता है, आकाश के बादलों

को देखते मेरा दिल निकल जाता है।" [पृष्ठ ७१] फिर 'मजदूरी और प्रेम' में भी यही बात दुहराते हैं—"प्रातःकाल उठकर यह अपने हल बैलों को नमस्कार करता है और हल जोतने चल देता है। दोपहर की धूप इसे भाती है। इसके बच्चे मिट्टी ही में खेल-खेल कर बड़े हो जाते हैं। इसको और इसके परिवार को बैल और गाँवों से प्रेम है। उनकी यह सेवा करता है। पानी बरसानेवाले के दर्शनार्थ इसकी आँखे नीले आकाश की ओर उठती हैं।"

पूर्णसिंह सम्पूर्ण मानव-समाज के प्राणी थे। ये गुण का आदर करते थे। इसीलिए इन्होंने अपने निबन्धों में बिना किसी भेद-भाव के *भगवान् शङ्कराचार्य, महाप्रभुचैतन्य, कपिल, गार्गी, शुकदेव*, बुद्ध आदि के साथ *मुहम्मद साहब, ईसा, मंसूर, शम्स तबरेज* आदि का अपार श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। इनके कमरे में तो ईसा मसीह का चित्र सदैव लगा रहता था। कुल मिलाकर पूर्णसिंह सर्वमानववादी, धर्मद्रष्टा, रहस्यवादी कवि, अपनी वाणी से श्रोतामात्र को मुग्ध कर लेनेवाले अद्भुत वक्ता, प्रेम में डूबे हुए भावुक और सच्चे देश-भक्त के सम्मिलित व्यक्तित्व थे।

उनके घर में किसी के लिए कोई भेदभाव नहीं था। प्रेम की मस्ती सदा उनके चेहरे पर छायी रहती थी। लोग मुग्ध हुए-से इनके चारो ओर एकत्र हुआ करते थे। इनका घर सभी का निवास-स्थान था। हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद न था। डा० *खुदादाद खाँ*—एक मुसलमान पूर्णसिंह के बड़े मित्र थे, जो इनके घर में परिवार के एक सदस्य की भाँति रहते थे। देहरादून में वे इनकी अन्तिम साँस तक साथ रहे।

पूर्णसिंह जब भाषण देते थे तब श्रोता इतने मुग्ध होकर सुनने लगते थे कि चारों ओर सन्नाटा छा जाता था और कहीं सुई के गिरने तक की आवाज नहीं आती थी। स्वयं भी बड़े जोश और मस्ती के साथ बोलते थे, जिसमें बड़ी अनोखी-अनोखी बातें इनके कंठ से निकल जाती थीं। यही हाल इनके लिखने का था। जब लिखने लगते थे तब प्रायः एक बैठक में ही बैठकर सब लिख डालते थे। या लगातार लिखते रह जाते थे। पंजाबी के 'चरखों के गीत' (तिञ्ञ्या दीयाँ सहियाँ) का अनुवाद इन्होंने अंग्रेजी में 'सिस्टर्स ऑव दी स्पिनिङ्ग ह्वील' नाम से किया है. इस रचना को इन्होंने तीन दिन तीन रात में लगातार बैठकर लिखा था।

इनके कविता-पाठ में और भी अधिक मनमोहक वातावरण उपस्थित हो जाता था। जब ये ईश्वर को सम्बोधन करके लिखी हुई अपनी कवितायें पढ़ते थे तब प्रेम में इनकी आँखों से आँसू की बूँदें ढुलकने लगती थी, ये आत्मज्ञान में विभोर हो जाते थे और चेहरा चमक उठता था। इनके अद्भुत व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० *काशीप्रसाद जायसवाल* ने, जो इनके साथ रह रहे थे, लिखा है—

"वेदान्ती पूर्णसिंह का विचित्र व्यक्तित्व था। मैंने पहले पहल उनसे उसी रूप में परिचय प्राप्त किया। एक निर्दोष, इकहरा शरीर; साफ छटी हुई मूछ-दाढ़ी शान्त और असाधारण सौन्दर्य दिव्य मुखमंडल था, जिस पर योग की ज्योति जगमगाया करती थी। नवयुवक पूर्ण की वाणी में बिजली भरी थी। जब वे बात करते थे तो सब को वश में कर लेते थे। × × × वे अपने अन्तर में ही परब्रह्म को पाने का यत्न करते रहते थे। जो कोई भी पूर्णसिंह की बातें सुनता था, वह भूल जाता था कि पूर्णसिंह नवयुवक हैं, उसे ऐसा ज्ञान होता था, मानो कोई गुरु बात

कर रहा हो। यदि मैं वेदान्ती पूर्ण के एक व्याख्यान के प्रभाव का वर्णन करने की चेष्टा करूँ, तो लोग मुझे अतिशयोक्ति का दोष देने लगेंगे। अपने सम्बन्ध में तो मैं केवल यही कहूँगा कि मुझे उनके व्याख्यान से यह बात समझ में आ गयी कि किस प्रकार महान् सन्त लोग जनता से कहते हैं—"मेरा अनुसरण करो" और किस प्रकार जनता उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करती है।

वे कवि थे। परन्तु उन्होंने अपने विचार प्रकट करने के लिए अंग्रेजी भाषा को अपनाया था उनकी स्टाइल, उनकी स्वच्छन्दता, उनका बल और उनकी रहस्यमयी गरिमा श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी।

परन्तु मास्टर अमीर चन्द के अभियोग और उनकी फाँसी के बाद अपनी प्राण-रक्षा के लिए सिद्धान्त से गिर जाने के कारण वेदान्ती पूर्णसिंह का व्यक्तित्व, जिस पर *स्वामी रामतीर्थ* की छाया और उनकी प्रेरणा थी, बहुत कुछ बदल गया।

इनकी भावुकता कहीं-कहीं सीमा लाँघ जाती थी, यही कारण था कि ये अपने पचास वर्ष की आयु में जीवन को किसी स्थायी कार्यक्रम में न बाँध सके। इनकी भावुकता के ऐसे ऐसे उदाहरण हैं, जो तार्किक व्यक्ति को हैरान कर देंगे। जब ये देहरादून में अध्यापक थे, इनके घर पर साधु-संतों की भीड़ लगी रहती थी और प्रायः सभी का अच्छा सत्कार इनके घर पर होता था! एक बार ये घर पर नहीं थे, इनकी साध्वी स्त्री भी, जो अपने हाथों घर का सारा काम-काज करती थीं, किसी कार्य में व्यग्र थीं, उसी समय एक साधु आये। इनके पिता जी कमरे में बैठे हुए थे, उनकी साधुओं पर अधिक आस्था नहीं थी, शायद उन्होंने कुछ कह दिया और साधु क्रोध में भर कर कुछ कहते हुए उधर से ज्योंही आगे बढ़े कि आगे से पूर्णसिंह आ रहे थे, पूर्णसिंह ने उन्हें बहुत मनाया

और प्रेम में गले से लिपट गये लेकिन साधु का क्रोध शान्त न हुआ और वह बड़बड़ाते रहे। पूर्णसिंह पश्चात्ताप में पागल होकर जमीन पर गिर पड़े और आँखों से आँसू बह चले। उसी समय *आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और पण्डित पद्मसिंह शर्मा* इनसे मिलने के लिए वहाँ पहुँचे लेकिन जब शर्मा जी ने इनको उठाकर बैठाया कि आचार्य द्विवेदी जी आये हैं तब ये उनको पहचान सके और इनकी बेहोशी दूर हुई।

पूर्णसिंह का साहित्य

पूर्णसिंह ने जो कुछ लिखा है वह भाव और रस की दृष्टि से सप्राण है और उनकी तह में चलने वाले विचारों की दृष्टि से महत्वपूर्ण! वे विचार भी ऐसे है जिनमें क्रान्ति की आग भी है और शान्ति का सन्देश भी। सबसे अधिक इन्होंने अँग्रेजी में लिखा है और उससे कम पंजाबी में। हिन्दी के हिस्से में तो केवल छह निबन्ध ही आ सके। लेकिन इनका साहित्यिक सम्मान तीनों भाषाओं में एक समान ऊँचा है।

पंजाबी में इनकी तीन पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध है—१.खुले मैदान

---

*पूर्णसिंह जी की अंग्रेजी की तीन पुस्तकों—'टेन मास्टर्स' तथा 'दि स्टोरी ऑव राम' एवं चरखे के गीतों का अनुवाद 'दि सिस्टर्स ऑव स्पिनिंग ह्वील'—का उल्लेख पहले हो चुका है। इसके अतिरिक्त इनकी अंग्रेजी में लिखी और अनूदित पुस्तकों की सूची यह है— (१) स्प्रिट बार्न पिपुल (२) दि अनस्ट्रंग बीड्स (३) एट हिज फीट (४) एन आफ्टरनून विथ सेल्फ (५) दि स्प्रिट ऑव ओरियन्टल पोयट्री (६) वीना, प्लेयर (७) हिमालियन पाइनस (८) दि टेम्पुल ऑव टुलिप्स (९) बर्निंग कैन्डिल (१०) स्प्रिट ऑव सिख (११) गुरु नानक जी के 'जपजी' का अनुवाद और (१२) भाई वीरसिंह की कविताओं का अनुवाद।

२. खुले घुंड (घूंघट) और ३. खुले खेल। उन्होंने पंजाबी मे 'वार्तक कविता' (कथोकथन शैली) नाम से एक नयी शैली चलायी पहली दो पुस्तकें उसी शैली में लिखी गयी है। बलदे दीवे इनकी दूसरी कविता पुस्तक है तथा मुइया दी जाग, प्रकाशना और भगीरथ ये तीन उपन्यास है।

इन्होंने पंजाबी से कई चीजों का अनुवाद अंग्रेजी में किया, जिसमें गुरु नानक जी के 'जपजी' का अनुवाद बहुत प्रशंसित हुआ है। चरखे के गीत और भाई वीरसिंह की कविताओं का अनुवाद भी बहुत प्रसिद्ध है।

हिन्दी के हिस्से में जो छह निबन्ध पड़े, वे है—सच्ची वीरता, कन्या-दान, पवित्रता, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम तथा अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट ह्विटमैन। इनकी व्यञ्जना शैली, भावात्मकता और मौलिकता इतनी विलक्षण थी कि केवल इन्हीं लेखों के सहारे ये हिन्दी-साहित्यिक के इतिहास में अजर-अमर हो गये और इनकी हिन्दी के उच्चकोटि के निबन्धकारों में गणना होने लगी। प्रसिद्ध समालोचक *आचार्य पद्मसिंह शर्मा* ने इनकी मृत्यु पर शोकोद्गार प्रकट करते हुए इनके निबन्धों के मूल्यांकन में कहा है—"प्रो० पूर्णसिंह सिख जाति के ही नहीं, सम्पूर्ण देश के एक पुरुष-रत्न थे। × × × प्रो० पूर्णसिंह केवल पंजाबी और इंगलिश के ही उच्चकोटि के लेखक न थे, वह हिन्दी उर्दू के भी बहुत ही अद्भुत लेखक थे। उनके एक ही लेख ने हिन्दी संसार को चौंका दिया। × × × सरस्वती में उनका पहला लेख प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक 'कन्या-दान' था और जिसका दूसरा नाम नयनों की गंगा' है। इस लेख की उस समय धूम मच गयी थी, यह लेख सचमुच ही नयनों की गंगा है। इसे पढ़कर पाषाण-हृदय भी पिघल उठते हैं। इस विषय का ऐसा लेख हिन्दी में आज तक

दूसरा नहीं देखा गया। केवल इसी लेख के आधार पर हिन्दी गद्य के एक इतिहास-लेखक ने प्रो० पूर्णसिंह का हिन्दी-गद्य-लेखकों में एक विशेष स्थान माना है। जो बिलकुल यथार्थ है। वह एक लेख ही प्रो० पूर्णसिंह के नाम को साहित्य-सेवियों में अमर रखने के लिए पर्याप्त है, हिन्दी गद्य के अनेक वृथापुष्ट पोथों से यह लेख कहीं अधिक मूल्यवान् है। 'भारतोदय' में उनका 'पवित्रता' शीर्षक लेख छपा है वह भी अपने ढंग का निराला है। हिन्दीवालों को चाहिए कि वह उनके लेखों के संग्रह के प्रकाशन का उचित प्रबन्ध करके अपनी कृतज्ञता प्रकट करे।"

इतना निश्चित है कि पूर्णसिंह ने *आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी* और उनकी 'सरस्वती' से प्रभावित होकर हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया होगा। उस समय देहरादून में प्रोफेसर थे, इसलिए सरस्वती में इनके जो लेख छपे है उनमें इनके नाम के साथ 'अध्यापक' शब्द लिखा हुआ है। जैसा कि *पण्डित पद्मसिंह शर्मा* ने उल्लेख किया है इनका पहला लेख सरस्वती में प्रकाशित हुआ था किन्तु वह 'कन्या-दान' नहीं, उसके भी पूर्व प्रकाशित 'सच्ची वीरता' था। ये निबन्ध केवल निबन्ध ही नही है, इनमें श्रेष्ट कविता का भी पुट है, एक साथ ही इनमें एक ओर आत्मा को झिझोर कर देनेवाला भावो-अनुभावो से भरा हुआ काव्य का रस छलकता है और दूसरी ओर विचारो की चिन्तन-परम्परा नुकीले पहाड़ों-सी खड़ी हो जाती है। हिन्दी में पूर्णसिंह के पीछे इस कोटि के भावात्मक निबन्धो के लिखने में विशेष प्रगति नहीं हुई। केवल *डॉ० रघुवीर सिंह* ने ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर ऐसे भावात्मक निबन्ध लिखे, अथवा इधर नवोदित लेखकों में पुनः *श्री विद्यानिवास मिश्र* भावनापूर्ण ऐसे निबन्धों की रचना हिन्दी में कर सके हैं।

पूर्णसिंह के सभी निबन्धों का यह स्वतंत्र पुस्तकाकार रूप पहली

बार हिन्दी जगत् के सामने आ रहा है। ये निबन्ध प्रायः हिन्दी क.

प्रस्तुत संग्रह

पाठ्यपुस्तकों में पाये जाते हैं पर उन पुस्तकों मे संगृहीत तथा इस पुस्तक में मुद्रित निबन्धों के पाठ में पाठकों को अध्ययन करते समय काफी अन्तर मिलेगा। पाठ्य-पुस्तक के सम्पादकों ने इनके निबन्धों को स्थान देते समय उनके मूल रूप में काफी परिवर्तन और कहीं परिवर्द्धन भी कर दिया है। मुझे यह रीति पसन्द नहीं है। मैंने इस संग्रह में इनके सभी निबन्ध उसी रूप में संकलित किये हैं जिस रूप में ये आज से ४६ वर्ष पूर्व पत्रों में प्रकाशित हुए थे। इस कारण इन निबन्धों में विद्वानों को पढ़ते समय लिंग और वाक्य संगठन-सम्बन्धी अशुद्धियाँ मिल सकतीं हैं, मैंने उनका संशोधन करना लेखक और भाषा के इतिहास के साथ अन्याय समझा। पूर्णसिंह की मातृभाषा पंजाबी थी, इसलिए इन लेखों में व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ मिल जाना स्वाभाविक बात है, हमें तो हिन्दी के लिए यह गौरव समझना चाहिए कि इन्होंने हिन्दी में लिखा। वस्तुतः ये शुद्ध नागरी लिपि नहीं लिख पाते थे और उर्दू लिपि में अपने लेख लिखा करते, बाद में उनका उलथा नागरी लिपि में होता था। किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि *आचार्य द्विवेदी* जी के सम्पादकत्व में भी "सरस्वती" के लेखों में शब्दों की एकरूपता नहीं पायी जाती थी, जैसा कि हमें अध्यापक पूर्णसिंह के लेखों में देखने को मिलता है। अनुस्वार, स्वर और व्यञ्जन की बात तो छोड़िए, एक ही लेख में 'यूरप' और 'यूरोप' जैसी विभिन्नतायें (दे० 'सच्ची वीरता' पृष्ठ २८-२९] भी पायी जाती हैं।

आचार्य पण्डित पद्मसिंह शर्मा के लेख के अनुसार इनका 'पवित्रता' निबन्ध का उत्तरार्ध अप्रकाशित है और प्राप्त निबन्ध अधूरा ही है।

अध्यापक पूर्णसिंह अँग्रेजी, पंजाबी, उर्दू तथा संस्कृत आदि कई भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। ऐसी दशा में इनके निबन्धों में इन

भाषाओं के उद्धरणों का आना स्वाभाविक ही था। अँग्रेजी के उद्धरण तो इन्होंने कई एक दिये है, इसी प्रकार उर्दू शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने जमकर किया है। यत्र-तत्र संस्कृत और पंजाबी के उद्धरण भी आ गये हैं। मैंने अँग्रेजी-उद्धरणों का तो फुटनोट में अनुवाद दे दिया है, शेष के स्पष्टीकरण के लिए पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट सलग्न है। फुटनोट में जो उद्धरण अङ्क के माध्यम से न दिये जाकर विशेष चिह्नों के माध्यम से दिये गये हैं, वह 'सरस्वती' में मूल निबन्ध के साथ ही प्रकाशित सामग्री है।

इस उद्भट लेखक का बहुत कुछ दुर्भाग्य था कि जहाँ ये हिन्दी में भावात्मक निबन्धो के जन्मदाता तथा लाक्षणिकता-प्रधान-शैली के प्रतिष्ठापक हैं यहाँ हिन्दी के माने जाने समालोचक भी इनके विषय मे बहुत कम जानकारी रखते है। पूज्य-पाद आचार्य शुक्ल जी ने अपने साहित्य के इतिहास मे इनके द्वारा केवल तीन चार ही निबन्ध लिखे जाने का उल्लेख किया है। एक समालोचक ने तो इनके सम्बन्ध मे यहाँ तक लिख मारा है कि ये गाँधीवाद से प्रभावित थे, पर वास्तविक बात तो यह है कि जिस समय ये लेख लिखे गये उस समय भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी का कोई अस्तित्व ही नही था। यह बात सही है कि आज से ४६ वर्ष पूर्व यूरोप के कुछ हिस्सों में मजदूर-संगठन-विषयक जिस आन्दोलन का जन्म हो रहा था उससे सरदार जी पूर्ण रूप से परिचित थे। उसका प्रत्यक्ष प्रभाव इनके '**मजदूरी और प्रेम**' शीर्षक निबन्ध में मिलता है। उस आन्दोलन से प्रभावित निबन्ध के इन अंगों को देखिए—"**जब तक धन और ऐश्वर्य की जन्मदात्री हाथ की कारीगरी की उन्नति नही होती तब तक भारतवर्ष ही क्या किसी देश या जाति की दरिद्रता नहीं दूर हो सकती। यदि भारत की तीस करोड़ नर-नारियों की उंग-**

आलोचकों की उपेक्षा

लियां मिलकर कारीगरों के काम करने लगें तो उनकी मजदूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे × × × भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मजदूरी के बदले कलों से काम लेना काल का डङ्का बजाना है।" [मजदूरी और प्रेम' पृष्ठ १४६, १४६] निबन्धकार का यह मन्तव्य बाद में हमारे यहां के बड़े से बड़े नेताओं की दृष्टि में भी आया कि भारतवर्ष की दरिद्रता कुटीर-उद्योगों से ही दूर हो सकती है।

आशा है कि हिन्दी जगत् में इस पुस्तक का स्वागत होगा। आज हिन्दी देश की राष्ट्र भाषा है। पर बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि भारत के कुछ हिस्सों में इस समय भी हिन्दी का काफी विरोध हो रहा है। इसी नीति का अनुसरण पंजाब के सिख भाई भी कर रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पंजाब के सिख भाई सरदार पूर्णसिंह की इस पुस्तक को मनोयोग के साथ पढ़ेंगे तो हिन्दी के प्रति जो उनके मन में विद्वेष भावना है, भ्रममूलक सिद्ध होगी और उन्हें मालूम होगा कि हिन्दी किसी जाति विशेष की भाषा न कभी थी, न आज ही है। सरदार जी ने सिख होकर भी हिन्दी में जिस प्रकार के उच्च कोटि के निबन्ध लिखे हैं ऐसे निबन्ध जिनकी मातृ भाषा हिन्दी है वे भी आज तक नहीं लिख पाये। यदि सिख भाई भाषा के क्षेत्र में सरदार जी के समान हिन्दी के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करें तो देश और राष्ट्र का महान् कल्याण होगा।

इस पुस्तक को तैयार करने में मुझे हिन्दी के सुकवि भाई डॉ० *जयशंकर त्रिपाठी* से काफी सहायता मिली। वे अपने हैं अतः उनके सम्बन्ध में क्या कहूं। हिन्दी के उद्भट विद्वान डॉ० *हरबंश लाल शर्मा* ने इस पुस्तक की पाण्डित्यपूर्ण भूमिका लिखकर पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ा दी है। मेरी बड़ी इच्छा थी कि इस पुस्तक के साथ अध्यापक पूर्णसिंह की एक प्रामाणिक जीवनी दी जाय, लेकिन यह इच्छा पहले

संस्करण में पूरी न हो सकी। मुझे प्रसन्नता है कि अब जाकर प्रयत्न सफल हुआ और इस दूसरे संस्करण में जीवनी को बहुत कुछ पूरा किया जा सका है। भविष्य में यदि और भी कुछ नयी बातें जीवनी के सम्बन्ध में मालूम हुईं तो उनका समावेश अगले संस्करण में कर दिया जायगा। इनकी जीवनी से सम्बन्धित सामग्री पंजाब से प्राप्त करने में मुझे *डॉ० हरदेव बाहरी* एवं *श्री रामेश्वराचार्य शास्त्री* से बड़ा सहयोग प्राप्त हुआ है, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

इस नये संस्करण में 'पवित्रता' निबन्ध भी अपने पूर्व प्रकाशित रूप में सम्पादित होकर जा रहा है। इसकी मूल पाण्डुलिपि लेखक ने उर्दू में लिखी थी, उर्दू के उच्चारण में एकरूपता न होने के कारण नागरी लिपि में छपते समय जहाँ-तहाँ वर्ण-सम्बन्धी त्रुटियाँ हो गयी थीं। जैसे 'तो' प्रायः 'तौ' के रूप में आया है। ऐसे संदिग्ध स्थलों पर 'पवित्रता' निबन्ध में तथा दूसरे निबन्धों में भी मैंने शब्दों के शुद्ध रूप इस [ ] कोष्ठ में दे दिये हैं। निबन्धों का क्रम भी इस बार प्रकाशन-काल के अनुसार रखा गया है।

कवि कुटीर
दारागंज, प्रयाग।
गुरुपूर्णिमा २०१५ वि०

—प्रभात शास्त्री

भूमिका

निबन्ध की विशेषताएँ

अपने वर्तमान रूप में हिन्दी निबन्ध पश्चिम की देन है। हिन्दी के लेखकों ने प्रायः अंग्रेज निबन्धकारों को अपना आदर्श माना है। यह सब कुछ होते हुए भी हिन्दी निबन्ध को अंग्रेजी निबन्ध की हूबहू नकल कहना समीचीन न होगा। बाह्य आकार-प्रकार और वेश-भूषा पाश्चात्य ही सही किन्तु हिन्दी निबन्ध की आत्मा इस देश की है, यह उसके नाम से ही ध्वनित है। अंग्रेजी में निबन्ध को Essay (ऐसे) कहते हैं या यह कहिए कि Essay के लिए हिन्दी में निबन्ध शब्द स्वीकृत हुआ है। Essay शब्द का उद्भव फ्रांसीसी शब्द 'एसाई' से है जिसका अर्थ है प्रयास। इसका अर्थ हुआ कि अंग्रेजी 'ऐसे' शब्द का अर्थ अभीष्ट विषय के निरूपण का प्रयासमात्र है, परन्तु निबन्ध शब्द, जो हिन्दी में संस्कृत से ही लिया गया (नि—निश्शेष अर्थात् पूर्ण बन्ध = कसाव) 'सम्यक्‌कसाव' का द्योतक है। एक में विचारों अथवा भावों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न है, पर दूसरे में उन्हें कस कर बाँधने का कार्य है। स्पष्ट है कि पहले में अन्तःकरण (हृदय और बुद्धि) का उतना दखल स्वीकार नहीं किया गया जितना दूसरे में। बाह्य और आन्तरिक का यही भेद पश्चिम

पूर्व की विभाजक रेखा है जिसकी स्थिति अंग्रेजी और हिन्दी के निबन्धों के बीच में भी स्वाभाविक है। अंग्रेजी के सर्वप्रथम निबन्धकार बेकन ने भी 'ऐसे' को बिखरे हुए चिन्तन (Dispersed Mediraion) के रूप में माना है। इससे भी यही प्रकट होता है कि वे लोग निबन्ध को गम्भीर वस्तु न मानकर 'चलती हुई सी शैली' ही मानते है किन्तु प्रायः हिन्दी निबन्धकारों का मन्तव्य ऐसा नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध को गद्य की कसौटी माना है।

अधिक बड़ी वस्तु के बँधान में कसावट आ नहीं सकती, इसलिए निबन्ध का आकार अनिवार्य रूप से संक्षिप्तता की ओर झुका होना है। वैसे कुछ लोग ४००-५०० पृष्ठों के प्रबन्ध को भी निबन्ध कह देते है। किन्तु यह उचित नहीं जँचना। वास्तव में लघुकथा की तरह निबन्ध भी एक बैठक में पढ़े जाने योग्य होता है। निबन्ध और प्रबन्ध का अन्तर बहुत कुछ कहानी और उपन्यास के अन्तर जैसा भी समझना चाहिए। वर्सफोल्ड Worsfold ने लिखा है—

"The essay is distinguished by the brevity of its external form and by the presence of the element of reflection. It treats a subject from a Single point of view and permits the personal characteristics of the writer to assume a greater prominence than is permitted in the regular and complete treatment of the same subject in a treatise on book"

अर्थात् बाह्य आकार की संक्षिप्तता तथा चिन्तन-तत्त्व का समावेश निबन्ध के (प्रबन्ध से) भेदक है। इसमें विषय का निरूपण एकांगी होता है तथा लेखक की व्यक्तिगत विशेषताओं के स्फुरण का प्रबन्ध

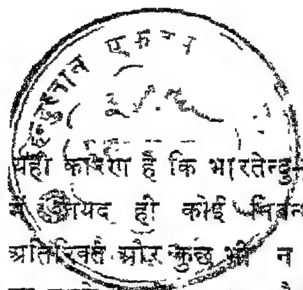
अथवा ग्रन्थ की अपेक्षा जिसमें विषय का संयत और विपद निरूपण होत. है, अधिक स्थान रहता है।

इस कथन से यह भी स्पष्ट है कि लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति निबन्ध में आवश्यक या अनिवार्य ही नहीं प्रधान भी है। यदि यह कहा जाय कि पाश्चात्य लेखक तो निबन्ध को व्यक्तित्व-प्रकाशन के माध्यमरूप में ही अपनाते हैं तो असंगत न होगा। जे० बी० प्रीस्टले के अनुसार 'सच्चे निबन्धकार के लिए किसी विषय विशेष का बन्धन नहीं, वह इच्छानुसार कोई भी विषय चुन सकता है। उसमें किसी विषय को मनोऽनुकूल कर लेने की शक्ति होती है क्योंकि इस कौशल के द्वारा वह वास्तव में अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता है··· एक-एक शब्द उसके अन्तर के तारों से मुखरित होकर निकलते हैं जिसमें उसके अन्तस्तल की अगाधता और आकुलता ध्वनि बनकर समायी रहती है।' अंग्रेजी के निबन्धकार अपने निबन्धों में चिन्तन, विषय-निरूपण और अध्ययनप्रसूत सिद्धान्तों का हल्का-सा रंग ही देना उचित समझते हैं जिनका प्रकृतस्थल उनकी दृष्टि में निबन्ध न होकर 'प्रबन्ध' है। उनके अनुसार यदि निबन्ध में इनका समावेश किया गया तो वह दुरूह हो जायेगा।

व्यक्तित्व-चित्रण को प्राधान्य देने में लेखक को प्रस्तुत विषय के अतिरिक्त भी बहुत कुछ कहना पड़ता है, इसलिए क्रैब ने निबन्ध को 'अनिवार्यरूप से अगूढ़' और जानसन ने 'अव्यवस्थित' रचना माना है। जब आत्माभिव्यक्ति ही प्रधान हो गयी तो तुच्छ से तुच्छ विषयों पर भी निबन्ध प्रस्तुत हुए। अंग्रेजी के 'कैट्स' और 'ए पीस ऑफ चॉक' आदि निबन्ध ऐसे ही हैं। हिन्दी में भी इस श्रेणी के अनेक निबन्ध हैं, उदाहरण के रूप में पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के 'आप,' 'बात' आदि पण्डित बालकृष्ण भट्ट का 'आँसू' और डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'नाखून क्यों बढ़ते हैं'। 'आम फिर बौरा गये' आदि का नाम लिया जा

सकता है, किन्तु इन निबन्धों में प्रस्तुत विषय का निरूपण भी हुआ है और लेखक उसे भी अपने व्यक्तित्व के साथ-साथ रखे हुए है। अंग्रेजी के निबन्धकार वैयक्तिकता का गाढ़ा रंग चढ़ाने के लिए इधर-उधर की बहुत-सी बातें कहते हैं उनके निबन्धों में अभीष्ट विषय विषयान्तर में प्रायः खो जाया करता है। हिन्दी निबन्धों में यह बात नहीं है। उनमें व्यक्तित्व-चित्रण के उद्देश्य से किये हुए विषयान्तर यथा प्रसङ्ग होते हैं और बहुत दूर तक नहीं जाते, जिससे अभीष्ट विषय का तारतम्य उनके कारण टूट नहीं पाता।

व्यक्तित्व के स्वच्छन्द प्रकाशन के अतिरिक्त रोचकता और साहित्यिकता पर भी पाश्चात्य निबन्धकार अधिक बल देते है। वास्तव में साहित्य के किसी भी अंग के लिए ये गुण अनिवार्यतः अपेक्षित है इस विषय में दो मत हो ही नहीं सकते। अतः भारतीय विद्वान् भी निबन्ध में इन दोनों तत्वों का समावेश आवश्यक समझते है। लक्ष्य दोनों का एक है किन्तु साधन और उनके आदेशों में अन्तर है। पाश्चात्य लेखक सरलता और काव्योपमता के माध्यम से रोचकता का पल्ला पकड़ते हैं, अपने वैयक्तिक अनुभवों का सरल शैली में उन्मुक्त प्रकाशन करते है—इतना उन्मुक्त कि पाठक भी निबन्ध के विषय को भूल कर लेखक के व्यक्तित्व से ही अधिक प्रभावित होता हुआ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है किन्तु हिन्दी-निबन्धकार विषय और विषयान्तर में सन्तुलन रखते हुए बुद्धि एवं हृदय के योग द्वारा रोचकता उत्पन्न करना अच्छा समझते हैं, निबन्ध को डायरी या संस्मरण की श्रेणी की ओर धकियाना उन्हें पसन्द नहीं। इसका कारण हमें भारतीय चिन्तनधारा के प्रवाह में दूर से ही फैला हुआ दीख पड़ेगा, जिसके अनुसार साहित्य का प्रत्येक अंग उद्देश्यविहीन मनोरञ्जन पर ही आधारित न रह कर 'हित' की भावना पर आश्रित रहता है। अतः उनमें आदर्श, सन्देश या उपदेश पर भी बराबर ध्यान दिया जाता है।



यही कारण है कि भारतेन्दु-युग से लेकर वर्तमान युग तक के निबन्धों में शायद ही कोई निबन्ध मिले जिसका उद्देश्य व्यक्तित्वचित्रण के अतिरिक्त और कुछ भी न हो। हिन्दी-निबन्धकार की आत्माभिव्यक्ति का सबसे जबरदस्त साधन शैली ही है। उसी के झीने पर्दे में वह अपने आपको छुपा कर प्रकट करता है।

अपने आकार-प्रकार में निबन्ध कहानी से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। कहानी की भांति यह भी एक निश्चित लक्ष्य लेकर चलता है। इसका आकार भी वैसा ही छोटा होता है, जिसके कारण इसमें भी कहानी जैसा ही अधूरापन रहता है जो अपने आपमें पूर्ण होता है। कहानी की तरह निबन्ध भी विषय के किसी एक अंग पर प्रकाश डालता है या सम्पूर्ण विषय की एक रूपरेखा प्रस्तुत करता है पर उनकी समाप्ति इस ढंग से होती है कि उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव समाप्ति-बिन्दु तक चरम सीमा पर पहुंच जाता है। कहानी और निबन्ध का सबसे बड़ा अन्तर यह है कि कहानी में कहानीकार तटस्थ और वस्तुनिष्ठ रहता है, खुल कर सामने नहीं आता परन्तु निबन्धकार आत्मनिष्ठ भी रहता है और पाठक के साथ सीधा तादात्म्य स्थापित कर लेता है। अंग्रेजी के समीक्षक निबन्ध को उसकी सरल एवं सरस शैली, आत्मनिष्ठा तथा अभिव्यक्ति की काव्यात्मकता के आधार पर प्रगीतमुक्तकों के समकक्ष मानते हैं। किन्तु हिन्दी के विचारात्मक निबन्ध इस कोटि में नहीं रखे जा सकते। अध्यापक पूर्णसिंह के भावात्मक निबन्ध अलबत्ता इसी श्रेणी में आते हैं और गद्यगीत तो ऐसे होते ही है।

निबन्ध में लेखकों का व्यक्तित्व-चित्रण आवश्यक है तो यह भी अनिवार्य है कि उसमें उसके हृदयपक्ष का भी महत्वपूर्ण योग हो। अंग्रेजी टाइप के मनमोजी निबन्धों का तो कहना ही क्या, गम्भीर विचारात्मक निबन्धों में भी भावमय स्थलों का होना अभीष्ट है। आचार्य

सकता है, किन्तु इन निबन्धों में प्रस्तुत विषय का निरूपण भी हुआ है और लेखक उसे भी अपने व्यक्तित्व के साथ-साथ रखे हुए हैं। अंग्रेजी के निबन्धकार वैयक्तिकता का गाढ़ा रंग चढ़ाने के लिए इधर-उधर की बहुत-सी बातें कहते हैं उनके निबन्धों में अभीष्ट विषय विषयान्तर में प्रायः खो जाया करता है। हिन्दी निबन्धो में यह बात नहीं है। उनमे व्यक्तित्व-चित्रण के उद्देश्य से किये हुए विषयान्तर यथा प्रसङ्ग होते हैं और बहुत दूर तक नहीं जाते, जिससे अभीष्ट विषय का तारतम्य उनके कारण टूट नहीं जाता।

व्यक्तित्व के स्वच्छन्द प्रकाशन के अतिरिक्त रोचकता और साहित्यिकता पर भी पाश्चात्य निबन्धकार अधिक बल देते है। वास्तव में साहित्य के किसी भी अंग के लिए ये गुण अनिवार्यतः अपेक्षित है इस विषय में दो मत हो ही नहीं सकते। अतः भारतीय विद्वान् भी निबन्ध में इन दोनों तत्त्वों का समावेश आवश्यक समझते हैं। लक्ष्य दोनों का एक है किन्तु साधन और उनके आदेशों में अन्तर है। पाश्चात्य लेखक सरलता और काव्योपमता के माध्यम से रोचकता का पल्ला पकड़ते हैं, अपने वैयक्तिक अनुभवों का सरल शैली में उन्मुक्त प्रकाशन करते हैं—इतना उन्मुक्त कि पाठक भी निबन्ध के विषय को भूल कर लेखक के व्यक्तित्व से ही अधिक प्रभावित होता हुआ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है किन्तु हिन्दी-निबन्धकार विषय और विषयान्तर में सन्तुलन रखते हुए बुद्धि एवं हृदय के योग द्वारा रोचकता उत्पन्न करना अच्छा समझते हैं, निबन्ध को डायरी या संस्मरण की श्रेणी की ओर धकियाना उन्हें पसन्द नहीं। इसका कारण हमे भारतीय चिन्तनधारा के प्रवाह में दूर से ही फैला हुआ दीख पड़ेगा, जिसके अनुसार साहित्य का प्रत्येक अंग उद्देश्यविहीन मनोरञ्जन पर ही आधारित न रह कर 'हित' की भावना पर आश्रित रहता है। अत उनमें आदर्श, सन्देश या उपदेश पर भी बराबर ध्यान दिया जाता है।

ही कारण है कि भारतेन्दु-युग से लेकर वर्तमान युग तक के निबन्धों में शायद ही कोई निबन्ध मिले जिसका उद्देश्य व्यक्तित्वचित्रण के अतिरिक्त और कुछ भी न हो। हिन्दी-निबन्धकार की आत्माभिव्यक्ति का सबसे जबर्दस्त साधन शैली ही है। उसी के झीने पर्दे में वह अपने आपको छुपा कर प्रकट करता है।

अपने आकार-प्रकार में निबन्ध कहानी से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। कहानी की भाँति यह भी एक निश्चित लक्ष्य लेकर चलता है। इसका आकार भी वैसा ही छोटा होता है, जिसके कारण इसमें भी कहानी जैसा ही अधूरापन रहता है जो अपने आपमें पूर्ण होता है। कहानी की तरह निबन्ध भी विषय के किसी एक अंग पर प्रकाश डालता है या सम्पूर्ण विषय की एक रूपरेखा प्रस्तुत करता है पर उनकी समाप्ति इस ढंग से होती है कि उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव समाप्ति-बिन्दु तक चरम सीमा पर पहुँच जाता है। कहानी और निबन्ध का सबसे बड़ा अन्तर यह है कि कहानी में कहानीकार तटस्थ और वस्तुनिष्ठ रहता है खुल कर सामने नहीं आता परन्तु निबन्धकार आत्मनिष्ठ भी रहता है और पाठक के साथ सीधा तादात्म्य स्थापित कर लेता है। अंग्रेजी के समीक्षक निबन्ध को उसकी सरल एवं सरस शैली, आत्मनिष्ठा तथा अभिव्यक्ति की काव्यात्मकता के आधार पर प्रगीतमुक्तकों के समकक्ष मानते हैं। किन्तु हिन्दी के विचारात्मक निबन्ध इस कोटि में नहीं रखे जा सकते। अध्यापक पूर्णसिंह के भावात्मक निबन्ध अलबत्ता इसी श्रेणी में आते हैं और गद्यगीत तो ऐसे होते ही हैं।

निबन्ध में लेखकों का व्यक्तित्व-चित्रण आवश्यक है तो यह भी अनिवार्य है कि उसमें उसके हृदयपक्ष का भी महत्वपूर्ण योग हो। अंग्रेजी टाइप के मनमौजी निबन्धों का तो कहना ही क्या, गम्भीर विचारात्मक निबन्धों में भी भावमय स्थलों का होना अभीष्ट है। आचार्य

शुक्ल जहाँ आदर्श निबन्ध में नये-नये विचारों की उद्भावना और उनके ग्रथित तारतम्य को आवश्यक समझते है जिसको पढ़कर पाठक की बुद्धि उत्तेजित होकर किसी नयी विचार पद्धति पर दौड़ पड़े, और उसकी गहन विचारधारा 'पाठकों की मानसिक श्रमसाध्य नूतन उपलब्धि के रूप मे जान पड़े,' वहाँ वे बुद्धि के साथ हृदय का योग भी आवश्यक समझते है। उनके 'लोभ और प्रीति,' 'श्रद्धा और भक्ति' जैसे निबन्धों में भी अनेक भावात्मक स्थल हैं जिनमे उनका मानव बार-बार उभर आया है। रोचकता उत्पन्न करने के लिए यह परमावश्यक है भी। इसीलिए निबन्ध की भाषा में हास्य, व्यंग, विनोद, ध्वनिप्रवणता और लाक्षणिकता आदि का समावेश स्वतः ही हो जाता है।

वर्गीकरण—

अपनी-अपनी व्यक्तिगत शैली के आधार पर अनेक लेखकों ने समय-समय पर बहुत से निबन्ध लिखे है जिनका वर्गीकरण विषय, शैली आदि के आधार पर कई प्रकार से किया जा सकता है, फिर भी साहित्य के इस अङ्ग की सर्वमुखी व्यापकता के कारण एक निश्चित वर्गीकरण करना असम्भव सा ही है। अंग्रेजी साहित्य में मोटे तौर पर 'विषय वस्तु प्रधान' और व्यक्तिप्रधान' भेदों की चर्चा है। बहुत से आलोचक निबन्ध के पाँच प्रकार बताते है—विचारात्मक, भावात्मक व्याख्यानात्मक, वर्णनात्मक तथा आख्यानात्मक। पहले प्रकार का वर्गीकरण तो हिन्दी निबन्धों की प्रकृति के ही अनुकूल नहीं पड़ता। हमारे प्रारम्भ में दिये गये विवेचन से ही यह निष्कर्ष निकल आता है। दूसरे वर्गीकरण का भी कोई सैद्धान्तिक आधार नही है केवल बाह्य विशेषताओं के आधार पर उन्हें श्रेणीबद्ध कर दिया गया है अतएव इनके अनुसार एक श्रेणी के निबन्ध दूसरी श्रेणी के निबन्धों के क्षेत्र में भी प्रविष्ट हो जाते दीख पड़ते हैं। व्याख्यानात्मक निबन्ध में भी विचार और भाव का मिश्रण

रहता ही है केवल अभिव्यक्तिशैली के आधार पर उसको अलग माना गया है। इसी प्रकार वर्णनात्मक तथा आख्यानात्मक निबन्धों में विचार और भाव की ओर ध्यान नहीं जाता, अपितु शैली की विशेषता के कारण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष घटनाओं की ओर ही जाता है। इस शैली के आधार पर वर्गीकरण करने से और भी कितने ही प्रकार सामने आ सकते हैं। वास्तव में प्रत्येक निबन्ध में विचार और भाव सामान्यरूप से रहते हैं इसलिए इन्हीं के आधार पर वर्गीकरण करना अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है। 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' के अनुसार विचारप्रधान निबन्धों को 'विचारात्मक' और भावप्रधानों को 'भावात्मक' वर्ग के अन्तर्गत मान लिया जाय तो कैसा रहे ? शुक्ल जी तो प्रकृत निबन्ध को विचारात्मक ही मानते हैं जिसमें बुद्धि के साथ हृदय का भी योग होता है।

हिन्दी निबन्ध शैली का विकास—

हिन्दी में निबन्धों का श्रीगणेश अंग्रेजी के अनुकरण पर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के भावात्मक निबन्धों से हुआ। हिन्दीसाहित्य के लिए यह एकदम अभिनव वस्तु थी। आधुनिक निबन्ध से मिलती जुलती कोई वस्तु संस्कृतसाहित्य में भी नहीं थी, यदि संस्कृत-साहित्य में भी निबन्ध के नाम पर कोई वस्तु खोजी ही जाय तो उसका रूप गद्यात्मक न होकर पद्यात्मक ही मिलेगा। कालिदास के नाम से प्रचलित 'ऋतुसंहार' विभिन्न ऋतुओं पर लिखे हुए निबन्धों का संग्रह कहा जा सकता है यद्यपि उनके सम्बन्ध में प्रयुक्त निबन्ध शब्द आधुनिक टिपिकल निबन्धों का संकेतक नहीं माना जा सकता। अंग्रेजी-साहित्य से हिन्दीसाहित्य का सम्पर्क होने के पूर्व अंग्रेजी में निबन्ध पूर्णतया विकसित हो चुका था। भारतेन्दु-युग के लेखक साहित्य के सभी अंगों के क्षेत्र में प्रयोग कर रहे थे। विदेशी साहित्य की चमक-दमक देख कर वे दंग रह गये थे और अपने साहित्य में भी एकबारगी

वैसी ही विविधता लाना चाहते थे। कभी वे उपन्यास का प्रणयन करते, कभी कहानी पर हाथ जमाते, कभी पत्र-सम्पादनकला में अपनी प्रतिभा की आजमाइश करते और कभी समय मिलने पर निबन्ध-रचना भी करते थे। व्यग्रता की इस दशा में निबन्ध का अन्य किसी साहित्यिक अङ्ग के समपतः संस्कृत हो जाने की आशा नहीं की जा सकती, अत. उस युग के निबन्धों में जहाँ भावों और विचारों की शिथिलता है वहाँ शैलीगत त्रुटियाँ भी परिलक्षित होती है, व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग, अव्यवस्थित शब्द-विन्यास, विराम आदि चिह्नों की उपेक्षा आदि अनेक प्रकार की शिथिलताएँ प्रायः तत्कालीन प्रत्येक निबन्धकार की भाषा में मिलती है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'कवि वचन-सुधा' में भाव व विचारमिश्रित अपने अनेक निबन्ध प्रकाशित कर इस दिशा में नवोदित लेखकों को मार्ग दिखा चुके थे परन्तु साहित्यिक निबन्धो का वास्तविक प्रारम्भ पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने किया। भारतेन्दु जी की भावात्मक शैली को निबन्धानुकूल व्यवस्थित कर उन्होंने उसके विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया। निबन्ध को साहित्यिक रूप देकर हिन्दी में विदग्धसाहित्य प्रस्तुत करना उनका प्रथम लक्ष्य था। संस्कृतप्रधान शैली के प्रवर्तक होकर भी वे भावानुकूल शब्दचयन का ध्यान रखते थे। अतः जहाँ उन्होंने संस्कृत के शब्दों से काम चलता न देखा वहाँ उर्दू और अंग्रेजी के सशक्त शब्दों को अपना कर शैली को पूर्णतया प्रभावोत्पादक बनाया। जानसन, एडिसन और मैकाले से वे बहुत प्रभावित थे। निःसन्देह उनके निबन्ध भारतेन्दु के निबन्धो की अपेक्षा हिन्दीगद्य को अधिक परिमार्जित कर सके। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र की-सी ग्राम्यता उनकी रचना मे नही मिलती।

भारतेन्दु-युग में ही 'प्रेमघन' ने विचारप्रधान निबन्ध का प्रारम्भ किया; 'भारतसौभाग्य', 'वारांगना-रहस्य', 'बंगविजेता', 'संयोगिता-

स्वयम्बर' आदि की आलोचना द्वारा उन्होंने नये क्षेत्र में कदम बढ़ाया और आलोचना का सूत्रपात किया। उनके निबन्धों की शैली में वैयक्तिक विलक्षणता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। संस्कृत के समस्त, सन्धिज आदि शब्दों के प्रयोग तथा अनुप्रास के योग से उन्होंने अपनी शैली को मनोरञ्जक बनाने का प्रयत्न किया है। उनके निबन्धों में विचार सूक्ष्मता और अर्थ-गाम्भीर्य का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास और गोविन्दनारायण मिश्र भी इसी श्रेणी के लेखक थे।

द्विवेदी-युग आधुनिक हिन्दीसाहित्य का परिमार्जन युग कहा जाता है। भारतेन्दु-युग की भाषागत अव्यावहारिकता, शिथिलता और व्याकरणहीनता को दूर कर उसे प्रौढ़, परिष्कृत और अभिव्यञ्जनक्षम बनाने के उद्देश्य से द्विवेदीजी ने सरस्वती के सम्पादन-कार्य को अपनाया। अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को हिन्दी का पुट देकर ही उन्होंने स्वीकार किया और बँगला आदि के शब्दों, मुहावरों के आधिक्य से भाषा का पिंड छुड़ा कर उसका संशोधन किया। 'भाषा की अनस्थिरता' आदि निबन्ध लिख कर उन्होंने अन्य लेखकों को भी परिष्कृत-भाषा लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। स्वतन्त्र रूप से विभिन्न विषयों पर उन्होंने अनेक विचारात्मक निबन्ध लिखे। 'विचार-विमर्श' 'साहित्य-संदर्भ,' 'लेखाञ्जलि, 'प्राचीन कवि और पण्डित' आदि उनके विचारात्मक निबन्धों के संग्रह हैं। 'बेकन-विचारावली' के नाम से उन्होंने बेकन के निबन्धों का अनुवाद भी निकाला।

द्विवेदी जी के निबन्ध दो प्रकार के हैं—प्रथम मनोरञ्जक और कौतूहलपूर्ण विषयों पर आधारित, दूसरे गहनविषयवाले। भावानुकूल-शैली की द्विवेदी जी ने दृढ़ प्रतिष्ठा की। पहले प्रकार के निबन्धों में उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों, प्रचलित मुहावरों तथा हास्य और व्यङ्ग्यपूर्ण कथनों द्वारा उन्होंने शैली में सजीवता और रोचकता का

समावेश किया है, प्रसाद तथा ओज के उचित सामञ्जस्य से उन्होंने उसमें स्पृहणीयता की प्राणप्रतिष्ठा की। दूसरे प्रकार के निबन्धों में मुहावरों तथा अन्य भाषाओं के शब्द बहुत कम हो गए हैं, व्यङ्ग्य और हास्य के छींटे भी नहीं पड़ते; संस्कृतशब्दावली का प्रयोग बढ़ता चला जाता है फिर भी विषयवस्तु का प्रवाह शिथिल नहीं हो पाता, उसमें दुरूहता नहीं आती। वास्तव में इनके निबन्धों में विषयवस्तु का नहीं शैली का महत्व अधिक है। अपने निबन्धों द्वारा उन्होंने भाषा के स्वरूप की अस्थिरता, अव्यावहारिकता, ग्राम्यता और च्युतसंस्कृति को दूर कर ऐसी शैली का सूत्रपात किया जिससे वर्तमान युग में निबन्ध शैली का चरम विकास सम्भव हो सका।

बाबू श्यामसुन्दरदास ने उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों से अपनी शैली को रोचक बनाना उचित नहीं समझा और संस्कृत शब्दों की प्रधानता रख कर भी उसे दुर्बोध होने से बचाये रखा। उनकी शैली में तार्किकता है जिसके कारण विषयप्रतिपादन प्रभावोत्पादक हो गया है। स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने व्यास शैली को अपनाया और निबन्ध-शैली में गम्भीरता का गहरा पुट दिया जो प्रायः अब तक नहीं आ पाया था।

विचारात्मक निबन्धों का चरमोत्कर्ष आचार्य शुक्ल के निबन्धों में सम्पन्न हुआ है। उन्होंने स्वयं निबन्धविषयक कुछ मान्यताएँ निर्धारित कीं, जो हिन्दीजगत् में प्रायः सर्वमान्य स्वीकृति हो चुकी हैं। उनकी दृष्टि से शुद्ध विचारात्मक निबन्धों का चरमोत्कर्ष वह कहा जा सकता है जहाँ एक-एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबा कर ठूँसे गये हों और एक-एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचारखण्ड को लिये हों। निबन्धों की शैली के विषय में उन्होंने लिखा है—"खेद है, समास शैली पर ऐसे विचारात्मक निबन्ध लिखनेवाले जिनमें बहुत ही चुस्त भाषा के भीतर

एक पूर्ण-परम्परा कही हो, दो-चार लेखक हमें न मिले।" यह कहने की आवश्यकता नहीं कि शुक्ल जी के निबन्ध उनको मान्दत आ- की कसौटी पर सवा सोलह आने खरे उतरते है और यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि इस दृष्टि से उनकी टक्कर का निबन्ध-लेखक हिन्दी ने अभी तक पैदा नहीं किया। विचारों से लबालब भरे हुए होने पर भी शुक्ल जी के निबन्धों में भावात्मकता के स्रोत स्थल-स्थल पर प्रवाहित होते हुए मिलेंगे। यह तथ्य उनके 'चिन्तामणि' के निवेदन से ही स्पष्ट है जिसके अनुसार "अपना रास्ता निकालती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहुँची है वहाँ हृदय थोडा बहुत रमता और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया है।" विषय और व्यक्तित्व प्रकाशन का ऐसा अपूर्व सामञ्जस्य हिन्दी निबन्धों में खोजे न मिलेगा। कोई निबन्ध, कोई पैराग्राफ, कोई वाक्य ऐसा न होगा जिसमें शुक्ल जी की आत्मा विद्यमान न हो। पंक्ति-पंक्ति बोल-बोल कर कहती है, मैं शुक्ल जी की शैली-मुद्रा से अंकित हूँ।

उनकी शैली समासशैली है, जिसमें व्यर्थ का एक भी शब्द न मिलेगा। भावमयता के साथ तार्किकता और पांडित्य के साथ स्वाभाविकता का उसमें अनोखा योग है। व्याकरण की पूर्ण शुद्धता और विरामादि चिह्नों की यथास्थान स्थिति के प्रति वे बड़े सतर्क रहे है। और इस सबको हम एक शब्द में इस प्रकार कह सकते हैं कि वे यथार्थतः 'आचार्य' है।

इस प्रकार हिन्दी में विचारात्मक निबन्धों के लिए बाबू श्याम-सुन्दरदास की व्यास शैली और आचार्य शुक्ल की समास शैली आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हुई हैं। हिन्दी के आधुनिक निबन्धकार प्राय उनमें से ही किसी शैली का अनुसरण करते है किन्तु इधर अनेक उदीयमान निबन्धकार अंग्रेजी निबन्धों से अधिक प्रभावित हुए है और उनकी शैली पर भी इसका प्रभाव लक्षित होता है।

अध्यापक पूर्णसिंह के निबन्ध

जिस प्रकार विचारात्मक निबन्धों का चरमोत्कर्ष आचार्य शुक्ल के निबन्धों में मिलता है उसी प्रकार भावात्मक निबन्धों का चरम विकास अध्यापक पूर्णसिंह के निबन्धों में परिलक्षित होता है। इनके जोड़ का भावात्मक निबन्ध लेखक हिन्दी में शायद ही कोई हो। गुलेरी जी केवल तीन कहानियाँ लिख कर हिन्दी के अमर कहानीकार बन गये तो अध्यापक जी केवल छह निबन्ध लिख कर हिन्दी के भावात्मक निबन्ध-लेखकों में ध्रुवपद प्राप्त कर गये। परिमाण के ऊपर गुण की महत्ता न होने के ज्वलन्त प्रमाण स्वरूप ये दोनों साहित्यकार सर्वदा याद किये जायेंगे।

विषय की दृष्टि से पूर्णसिंह जी के निबन्ध 'सामाजिक' कहे जा सकते हैं। किन्तु यहाँ 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग इसके वर्तमान अति प्रचलित अर्थ में नहीं है, हमारे कहने का आशय है कि इनके निबन्धों में लोकमंगल की भावना कूट-कूट कर भरी है। 'सच्ची वीरता' और 'पवित्रता' जैसे चारित्रिक निबन्ध भी व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि-को ही दृष्टिकोण में रखकर लिखे गये है, उनमें सरदार साहब का व्यापक दृष्टिकोण आद्योपान्त समाया हुआ मिलेगा। ये जाति, धर्म देश आदि की संकीर्ण भावनाओं से बहुत ऊपर थे, इनका हृदय प्रेम का स्रोत था। मानवता के ये पुजारी थे, बाह्य आडम्बर से ये घृणा करते थे और सन्त कवियों की तरह निर्भीक होकर पाखण्ड पर कटाक्ष करते थे परन्तु इनके व्यङ्ग्य भी नीरस नहीं कटुता का उनमें नाम नहीं। होता भी कैसे? इनका हृदय प्रेम का लहराता हुआ मानसरोवर था। फिर उसमें जो भी शब्द-मुक्ता निकलते उनमें सरसता क्यों न होती? इन्होंने कथन की अपेक्षा करनी पर बल दिया है केवल देवता, ऋषि, योगी महा-पुरुष बनने के लिए जोर नहीं दिया। इनका आदर्श था 'मानव'—साधारण मानव, दुनिया के प्रपञ्च से रहित सरल मानव—इसलिए ये कहते है—

"जब हम मनुष्य बन जावेंगे तब तो तलवार भी, ढाल भी, जप भी, तप भी, ब्रह्मचर्य भी वैराग्य भी सब के सब हमारे हाथ के कङ्कणों की तरह शोभायमान होंगे, और गुणकारक होंगे, इस वास्ते बनो पहले साधारण मनुष्य, सोते जागते मनुष्य, हंसते खेलते मनुष्य, नहाये धोये मनुष्य, प्राकृतिक मनुष्य, जाननेवाले मनुष्य, पवित्र हृदय पवित्र बुद्धिवाले मनुष्य, प्रेम भरे रस भरे, दिल भरे जान भरे, प्राण भरे मनुष्य। हल चलानेवाले, पसीना बहानेवाले, जान गँवानेवाले, सच्चे कपट रहित, दरिद्रता रहित प्रेम से भीगे हुए, अग्नि से सूखे हुए मनुष्य", और सचमुच ये ऐसे ही थे।

अध्यापक जी का व्यक्तित्व इनके निबन्धों में सर्वत्र प्रतिबिम्बित हुआ है, बल्कि कहना उचित होगा कि उसके अतिरिक्त और उनमें है ही क्या ? जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण, नैतिक और सामाजिक मान्यताएँ, आर्थिक आदर्श, विभिन्न धर्मों के प्रति समन्वयात्मक भावना आदि तो उनमें आ ही गये हैं साथ ही इनकी सात्विकता, सरलता, देश-प्रेम आदि के भाव भी स्थान-स्थान पर दीख पड़ेंगे जिनसे रोचकता ही नहीं, मर्मस्पर्शिता और प्रभावशालिता भी बढ़ गयी है। निबन्धों में उनका भावात्मक रूप प्रकट हुआ है फिर भी इन्हें केवल स्वप्न-द्रष्टा ही समझना भूल होगी। व्यावहारिक जीवन में ये कर्मठता के पक्षपाती हैं। पदार्थ में परिणत न हो सकनेवाला आदर्श इनकी दृष्टि में केवल मस्तिष्क का भार है, बल्कि इस भवसागर में गले में बँधी हुई शिला है जो एक दिन जरूर अपने साथ ले डूबेगी।

"तारागणों को देखते देखते भारतवर्ष अब समुद्र में गिरा कि गिरा एक कदम और, और धम नीचे ! कारण इसका केवल यही है कि यह अब तक अटूट स्वप्न में देखता रहा है और निश्चय करता रहा है कि मैं रोटी के बिना जी सकता हूँ, हवा में पद्मासन जमा सकता हूँ। यह

इसी प्रकार के स्वप्न देखता रहा, परन्तु अब तक न संसार ही की ओर न राम ही की दृष्टि में इसका एक भी वचन सिद्ध हुआ। यदि अब भी इनकी निद्रा न खुली तो बेधड़क शंख फूँक दो! कूच का घड़ियाल बजा दो! कहदो, भारतवासियों का इस असार संसार से कूच हुआ।"

न यह आक्रोश ही है और न चेतावनी ही, दुर्दशा की उमस में हृदयगगन में छाया हुआ देश-प्रेम का सघन घन बरस पड़ा है। और देखिए—

"भारतवासियों ने एक प्रकार की पुड़िया और गोली बनाई है जिसको खाते ही चन्द्रमा चढ़ जाता है, ज्ञान हो जाता है। वह हो पास तो फिर कुछ और दरकार नहीं होता। ओ जगत्वालो! बड़ी भारी ईजाद हुई है छोड़ दो अपनी पदार्थविद्या, जाने दो यह रेल, यह जहाज, ये नये २ उड़नखटोले, हवा में तैरनेवाले लोहे के जंजीरे, प्रकृति की क्यों छानबीन कर रहे हो? इससे क्या लाभ? हृषीकेश में वह अनमूल्य गोली बिकती है, और सिर्फ दो चपाती के दाम, जिस गोली के खाने से सारे जन्म कट जाते हैं, सब पाश टूट जाते हैं, और जीवनमुक्त हो सारे संसार को अपनी अङ्गुलियों पर नचा सकोगे, बिना नेत्र के, बिना बुद्धि के, बिना विद्या के, बिना हृदय के बुद्धवाली निर्वाण, पतञ्जलि वाली कैवल्य, वैशेषिक वाली विशेष, वेदान्तवाली विदेहमुक्ति मिलती है, बेचनेवाले देखो वो जा रहे हैं, तीन चार पुस्तके हाथ में हैं और तीन चार पुस्तकें बगल में, आपको इन दो पुराणों के पढ़ने से ही ब्रह्म की प्राप्ति हो गई है, ज्ञान हो गया है।" कर्मविहीन दर्शन पर ऐसा करारा व्यङ्ग्य हो सकता है? कबीर साहब अपनी वाणी को मुलायम बनाकर आये मालूम होते हैं। और तप या धर्म की यह व्याख्या कि—

"पहाड़ों पर चढ़ने से प्राणायाम हुआ करता है, समुद्र में तैरने से नेती धुलती हैं; आँधी, पानी और साधारण जीवन के ऊँच-नीच, गरमी-सरदी, गरीबी अमीरी को झेलने से तप हुआ करता है। आध्यात्मिक धर्म के स्वप्नों की शोभा तभी लगती है जब आदमी अपने जीवन का धर्म पालन करे।" कृष्ण के कर्मयोग का प्रथम सोपान यही है, निःसन्देह कोरी आध्यात्मिकता मृगतृष्णा है और कोरी कर्मठता अनन्त दलदल। दोनों में से एक भी स्पृहणीय नहीं, इनका उचित समन्वय ही जीवन का ठोस आधार बन सकता है। यही लेखक का उद्देश्य है।

वास्तव में भारतीय संस्कृति के स्वस्थ रूप में सरदार साहब की आस्था है। नारी-समस्या का भी इन्होंने अपने ढंग से समाधान प्रस्तुत किया है। नारी और पुरुष के क्षेत्रों में ये अन्तर मानते हैं और उनके एकीकरण को गृहस्थ-जीवन की अशान्ति का कारण बताते हैं—

"ऐसा मालूम होता है कि योरप की कन्याएँ भी दिल देने के भाव को बहुत कुछ भूल गई हैं। इसी से अलबेली भोली कुमारिकायें पार्ल्यामेंट के झगड़ों में पड़ना चाहती हैं, तलवार और बन्दूक लटका कर लड़ने मरने को तैयार हैं। इससे अधिक यूरप के गृहस्थ-जीवन की अशान्ति का और क्या सुबूत हो सकता है।"

किन्तु साथ ही 'नारी की झाँई परे अन्धा होत भुजंग' का सहारा ले उनको तिरस्कार की दृष्टि से देखनेवाले वैरागियों को भी ये पाखण्डी समझते हैं—"स्त्री का मुख देखना पाप है। बड़े-बड़े वैराग्य के ग्रन्थ खोल, गेरुआ रंगे हम अपनी माता बहन और कन्याओं को नग्न कर करके उनके हड्डी माँस की मल मूत्र को गिन गिन कर तिरस्कार करते हैं।" इनका विश्वास कि "जब तक आर्य कन्या इस देश के घरों और दिलों पर राज्य नहीं करती तब तक इस देश में पवित्रता नहीं आती। जब तक देश में पवित्रता नहीं आती, तब तक बल नहीं

आता।' "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्तु तत्र देवता:" के ही अनुसार है।

शारीरिकश्रम को अध्यापक जी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य मानते हैं। जो श्रम करके नहीं खाता वह उनकी दृष्टि में समाज के ऊपर भार ही नहीं उसका शोषक भी है। घरेलू उद्योगधन्धों को वे भारत की उन्नति के लिए आवश्यक समझते हैं। इनका विचार है कि "यदि भारत की तीस करोड़ नर-नारियों की उँगलियाँ मिल कर कारीगरी के काम करने लगें तो उनकी मजदूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे।" मशीनों का आधिपत्य इन्हें बहुत खलता है और वास्तव में "भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मजदूरी के बदलले कलों से काम लेना काल का डङ्का बजाना होगा।" इससे कोई भी विवेकी अर्थशास्त्री असहमत न हो सकेगा।

पूर्णसिंह जी के निबन्धों में इनका विस्तृत अनुभव, गहन निरीक्षण और गम्भीर अध्ययन सर्वत्र दृष्टिगोचर होगा। अनेकानेक सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं साहित्यिक संदर्भों का समावेश होने से उनमें रोचकता के साथ विश्वसनीयता भी आ गयी है। विभिन्न धर्मों और सभ्यताओं की चिन्तन-धाराओं का संगम इनकी विचारधारा को तीर्थराज बनाये हुए है। मानवता, गुण, पवित्रता और श्रेष्ठ आचरण किसी जाति अथवा धर्म विशेष से सम्बद्ध व्यक्तियों की ही थाती नहीं है अपितु वे सब जाति, सब धर्मों और देशों के लोगों में पाये जा सकते हैं। अत: सच्चे गुणी का आदर करना चाहिए, धर्मान्धता के कारण किसी को नीच समझना मानवता नहीं, इसी भाव को लेखक ने कितनी चमत्कारी, रहस्यमय, लाक्षणिक और ओजपूर्ण भाषा में प्रकट किया है—"जिस समय बुद्धदेव ने स्वयं अपने हाथों से हाफिज शीराजी का सीना उलट कर

उसे मौन आचरण का दर्शन कराया। उस समय फारस में सारे बौद्धों को निर्वाण के दर्शन हुए और सब के सब आचरण की सभ्यता के देश को प्राप्त हो गए। जब पैगम्बर मुहम्मद ने ब्राह्मण को चीरा और उसके मौन आचरण को नङ्गा किया तब सारे मुसलमानों को आश्चर्य हुआ कि काफिर में मोमिन किस प्रकार गुप्त था। जब शिव ने अपने हाथ से ईसा के शब्दों को परे फेंक कर उसकी आत्मा के नङ्गे दर्शन कराये तब हिन्दू चकित हो गये कि वह नग्न करने अथवा नग्न होने वाला उनका कौन सा शिव था? हम तो एक दूसरे में छिपे हुए हैं।"

गद्यशैली का प्रधान उद्देश्य प्रभावोत्पादन है। श्रोता या पाठक को प्रभावित करने के लिए लेखक अनेक प्रकार की योजनाएँ करता है। जिनका स्वरूप शैलीकार के व्यक्तित्व और अध्ययन आदि पर निर्भर होता है। अध्यापक पूर्णसिंह की शैली इनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही सरल एवं आडम्बरहीन है। इनके शब्द कण्ठ से नहीं हृदय से निकलते हैं और सीधे हृदय में पैठ जाते हैं। इनकी बात में सचाई का बल होता है। इनके हृदय की समस्त वृत्तियाँ वर्ण्य विषय पर आकर केन्द्रित हो जाती हैं और स्वयं वे 'तदाकार परिणति' को प्राप्त हो जाती हैं, यही कारण है कि पाठक का हृदय इनकी रचना में रमता चला जाता है क्योंकि उसे हृदय की ही वस्तु उसमें मिलती है—'ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि आँखिन को सुख होत।' पाठकों के हृदय में भावोद्रेक करने के लिए ये ऐसा वातावरण उपस्थित करते हैं कि हृदय मंत्रमुग्ध-सा उस ओर खिचा चला जाता है। एक उदाहरण लीजिए—

"गाढ़े की एक कमीज को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठकर सीती है; साथ ही साथ वह अपने दुःख पर रोती भी है—दिन को खाना न मिला। रात को भी कुछ मयस्सर न हुआ। अब वह एक-एक टाँके पर आशा करती है कि कमीज कल तैयार हो जायगी, तब

कुछ तो नाले को मिलेगा। जब वह थक जाती है तब ठहर जाती है। सुई हाथ में लिए हुए है, कमीज घुटने पर बिछी हुई है, उसकी आँखों की दशा उस आकाश की सी है जिसमें बादल बरस कर अभी बिखर गये हैं। खुली आँखें ईश्वर के ध्यान में लीन हो रही हैं। कुछ काल के उपरान्त 'हे राम' कह उसने फिर सीना शुरू कर दिया। इस माता और बहिन की सिली हुई कमीज मेरे लिये शरीर का नहीं मेरी आत्मा का वस्त्र है।" इस बात को इस तरह भी कहा जा सकता था कि 'एक दुखी विधवा के हाथ की सिली कमीज मेरी आत्मा का वस्त्र है।' किन्तु इनमें अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न नहीं हो सकता था, इसीलिए लेखक ने अपनी प्रतिभा से उस विधवा को निरीह अवस्था में पाठक के सामने लाकर बिठा दिया है, उसकी परिस्थितियों और वातावरण को भी सजीव कर दिया है, इतना सजीव कि काइयाँ से काइयाँ पाठक भी उससे कतरा कर नहीं निकल सकता, पत्थर से पत्थर दिल भी जिसे देख कर रो देगा—

'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।

इनके सभी निबन्ध ऐसे चित्रों से भरे पड़े हैं। 'पवित्रता' शीर्षक निबन्ध में यह शैली पराकाष्ठा को पहुँच गयी है।

शैली में भावानुकूल मोड़ देने में ये बड़े सिद्धहस्त हैं। वर्णनात्मक प्रसंगों में इनकी शैली बड़ी प्रवाहमयी होती है, वाक्य छोटे-छोटे, प्रभाव डालने के लिए वाक्य और शब्दों के स्थानों में व्यतिक्रम, क्रिया-का लोप आदि अनेक विशेषताएँ यहाँ देख पड़ेंगी—

'एक दफे एक राजा जंगल में शिकार खेलते-खेलते रास्ता भूल गया। उसके साथी पीछे रह गये। घोड़ा उसका मर गया। बंदूक हाथ में रह गई। रात का समय आ पहुँचा। देश बर्फानी, रास्ते पहाड़ी। पानी बरस रहा है। रात अँधेरी है। ओले पड़ रहे हैं। ठंडी हवा उसकी हड्डियों तक को हिला रही है।"

अपने मत के समर्थन अथवा प्रतिपादन में इनके वाक्य लम्बे तथा एक से अनेक उपवाक्यों के परिकर से सशक्त होते हैं, जिनकी गति में इतनी तीव्रता होती है कि पाठक को रुक कर सोचने का मौका ही नहीं मिलता और बात समाप्त होते-होते वह एक विचित्र-सी स्थिति से अपने आपको कथन के समर्थन की ही ओर झुका हुआ पाता है—

"यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षा के लिए—चाहे वह कन्या किसी जाति की हो, जिस किसी मनुष्य की हो, जिस किसी देश की हो—अपने आपको गंगा में फेंक दे—चाहे फिर उसके प्राण यह काम करने में रहें चाहे जायें—तो इस कार्य के प्रेरक आचरण की मौनमयी भाषा, किस देश में, किस जाति में और किस काल में, कौन नहीं समझ सकता है ?"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समान सूत्रात्मक वाक्यों का भी प्रयोग इन्होंने किया है जिनकी व्याख्या सहज नहीं—"मनुष्य तो मनुष्य के समष्टि रूप का व्यष्टिरूप परिणाम है।"

"मजदूरी करना जीवनयात्रा का आध्यात्मिक नियम है।

"प्रेम की भाषा शब्द रहित है।

आदि वाक्य इसी प्रकार के है।

मिथ्या गर्व आदि बातों से—जिन्हें अध्यापक पूर्णसिंह अनुचित समझते है—खीझ कर कहीं-कहीं इन्होंने कटूक्तियों का भी प्रयोग किया है, किन्तु इस विषय में इनका उद्देश्य उत्तेजना का संचार का अनुचित से उचित की ओर प्रवृत्ति होने की प्रेरणा देने के कारण प्रशंसनीय ही है, गर्हणीय नहीं—उदाहरण लीजिए—

"किसी ने इन (भारतवासी) काठ के पुतलों को जो कहा कि तुम ऋषि सन्तान हो, बस, अब हम ऋषिसन्तान है, इसकी माला फिरनी शुरू हुई है‥‥—वे ऋषि अब होते तो सच कहता हूँ हमको म्लेच्छ

कह कर हमसे धर्म-युद्ध रचाते और हमें इस देश से निकाल कर इस धरती को फिर से आर्यभूमि बनाते।"

तुकदार शब्दों के प्रयोग और विरुद्ध-सी उक्तियों द्वारा भी उन्होंने कहीं-कहीं चमत्कार उत्पन्न किया है।—

"वे काली-काली मशीनें ही काली बनकर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं।

"कामनारहित होते हुए भी मजदूरी निष्काम होती है।"

"कायर पुरुष कहते हैं—'आगे बढ़े चलो।' वीर कहते हैं—'पीछे हटे चलो।"

"राजा में फकीर छिपा है और फकीर में राजा, बड़े-बड़े पंडित में मूर्ख छिपा है और मूर्ख में पंडित, वीर में कायर और कायर में वीर सोता है, पापी में महात्मा और महात्मा में पापी डूबा हुआ है।"

कहीं व्यंग्यात्मक प्रश्नों की झड़ी से कहीं रूपक और उपमाओं की लड़ी से अपने वक्तव्य में जान डाल देना सरदार साहब को खूब आता था। यथार्थ विषयवस्तु इस प्रकार के स्थलों पर गतिहीन हो कर स्थिर सी हो जाती है, फिर भी काव्यात्मक चमत्कार का प्रभाव पाठक के मन को रमाये रहता है—

"तीक्ष्ण गरमी से जलेभुने व्यक्ति आचरण के काले बादलों की बूंदा बांदी से शीतल हो जाते हैं। मानसोत्पन्न शरद्ऋतु से क्लेशातुर हुए पुरुष इसकी सुगन्धिमय अटल वसंत ऋतु के आनन्द का पान करते हैं। आचरण के नेत्र के एक अश्रु से जगत् भर के नेत्र भीग जाते हैं। आचरण के आनन्द नृत्य से उन्मदिष्णु होकर वृक्षों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं।"

लाक्षणिकता इनकी शैली का प्राण है। इस प्रकार का शैलीकार हिन्दी-जगत् में दूसरा नहीं हुआ यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। वास्तव में इनकी लाक्षणिकता ऊपर से थोपी गयी वस्तु नहीं है अपितु भावों के

उमड़ते हुए सागर के शतमुख होकर बह निकलने से उसका समावेश खुद-ब-खुद हो गया है, ठीक उसी तरह जिस तरह उपमा, रूपक, स्मरण, विरोधाभास आदि अनेक अलङ्कार इनकी रचना में अनजाने ही जड़ गये हैं।

इनका भाषाविषयक दृष्टिकोण अत्यन्त उदार रहा है। अंग्रेजी और उर्दू के साहित्य और भाषा का गहन अध्ययन इनकी शैली में अपना रङ्ग देकर फूटा है। अंग्रेजी साहित्य की अनेक साहित्यिक कृतियों एवं तत्सम्बन्धित पात्रों का यथास्थान संकेत करके तथा उर्दू कवियों की उक्तियाँ उद्धृत करके इन्होंने अपने विषय की पुष्टि की है और उर्दू तथा अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को मुक्तहस्त स्वीकार कर अपनी शैली को 'सैक्युलर' बना दिया है—नुस्खा, बदहज्मी, बे-सरो-सामान, नामोनिशान, दीदार, बर्फानी, समाँ, मयस्सर, तरोताजा, कलाम, गुस्ताखी, शिकस्त, जवाल, इलहाम, लिबास, अक्स, पर्दानशीन, तूफान, कुदरत आदि अनेक शब्द इनकी रचना में मिलेंगे। संस्कृत के तत्सम, समस्त, सन्धिज सभी प्रकार के शब्द भी इनके निबन्धों में प्रयुक्त हुए हैं—उदारहृदया, सम्पन्ना, ज्योतिष्मती मानसोत्पन्न, उन्मदिष्णु, गौरवान्वित, औदार्य आदि शब्द गिनाये जा सकते हैं किन्तु उर्दू के शब्दों की अपेक्षा ये बहुत कम अनुपात में प्रयुक्त हुए हैं। वास्तव में 'व्यावहारिक भाषा' इनका लक्ष्य था, अतः जनसाधारण में प्रचलित बोधगम्य शब्दावली को ही इन्होंने अधिक प्रश्रय दिया है, संस्कृत के शब्द तो इनकी काव्योचित भावुकता की लपेट में खुद चले आये हैं। चोचला और फलाँग जैसे ठेठ बोलचाल के ग्रामीण, और बेरस जैसे द्विज शब्द भी इनकी रचना में मिल जाते हैं। 'मुख मोड़ना,' 'खाक-छानना', 'समाँ बाँधना', आँखों में धूल डालना', 'कूच करना', 'मैदान हाथ में होना' आदि मुहावरों द्वारा भी शैली में सजीवता उत्पन्न करने का सफल प्रयास इन्होंने किया है। सारांश यह है कि भावों को अधिक से

अधिक गम्य बनाने के लिए जहाँ कहीं भी, जो कुछ भी साधन इन्हें मिला उसका उन्होंने बेहिचक प्रयोग किया है।

बात शायद अधिक बढ़ती जा रही है, वास्तव में अध्यापक पूर्णसिंह के गिने-चुने निबन्धों के वैशिष्ट्य-उद्घाटन के लिए गिनी-चुनी पंक्तियाँ पर्याप्त नहीं, यह तो एक स्वतन्त्र पुस्तिका का विषय है, पर जब बात आ पड़ती है तो बहुत कम कहते-कहते भी बहुत कुछ हो जाता है। अतः दो एक आवश्यक बातों की ओर संकेत कर यह वक्तव्य समाप्त करता है।

ऊपर सरदार साहब की शैली की विशेषताएँ बताने का प्रयास किया है। किन्तु इनके आधार पर यह समझ लेना चाहिए की इनकी शैली में सब गुण ही गुण है। कहीं-कहीं पर इनका सबसे बड़ा गुण—भावुकता—ही भावों के मार्ग में आड़ा बनकर अड़ गया है और शैली का सबसे बड़ा दोष बन गया है। ऐसे स्थलों पर भाव रहस्यमय से हो गये है जो साधारण तो क्या विशिष्ट पाठक की पकड़ में भी मुश्किल से ही—और शायद नहीं—आ पायेंगे। उदाहरण के रूप मे पीछे उद्धृत बुद्धदेव और हाफिज शीराजी आदि वाला अवतरण प्रस्तुत किया जा सकता है। कहीं-कहीं तो इनकी भावुकता इतनी बढ़ गयी है उसकी 'रनक' इतनी देर तक सवार रहती है कि सन्तुलित भावोंवाला पाठक गूढ़ तथा असम्बद्ध-से लम्बे-लम्बे भावमय कथनों को 'प्रलाप' जैसा समझने लग जाय तो आश्चर्य नहीं। भाषाविषयक स्खलन भी मिलते है। कहीं-कहीं कारकसूचक विभक्तियों का ऐसा जमघट हो गया कि मूलभाव तक पहुँचने मे पाठक को कठिनाई होती है। यथा—

"आचरण के विकास के लिये नाना प्रकार की सामग्रियों का, जो संसारसंभूत शारीरिक, प्राकृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन में वर्तमान हैं, उन सबकी [सबका]—क्या एक पुरुष और क्या

एक जाति के आचरण के विकास की सामग्री [illegible]
करना होगा।"

व्याकरणविषयक स्खलन भी यत्र-तत्र [illegible] ..., [illegible]
उपस्थिति से मन और हृदय की अनुभूति [illegible]
का रूप स्त्रीलिंग के स्थान में पुँल्लिग प्रयुक्त हुआ है। [illegible]
अलंकार-शास्त्रियों को ये दोष बहुत कुछ [illegible]
कि इन निबन्धों की अनगिन विशेषताओं में [illegible]
ही हैं—"एकोऽपि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।

एक बात इस संकलन के सम्बन्ध में भी। [illegible]
निबन्धों का यह सर्व प्रथम संकलन और सम्पादन है। [illegible]
महत्त्वपूर्ण है, फिर इसके सम्पादक का हिन्दी-संस्कृत के [illegible]
होना सोने में सुगन्ध का योग करता ही है, फिर भी [illegible]
है कि यह कार्य बड़ी हड़बड़ी या जल्दी में [illegible] हुआ है। [illegible]
पर टिप्पणी की आवश्यकता है। निबन्ध के [illegible]
और कथनों पर सम्पादक ने जो प्रश्न-सूचक [illegible]
पर उनमें से कई एक व्यर्थ सिद्ध होते हैं। फिर भी [illegible]
यह पुस्तक संग्रहयोग्य है। आशा है इसका दूसरा संस्करण और भी [illegible]
परिष्कृतरूप में सामने आयेगा।

विजया दशमी, २०१३।

[illegible]
एम० ए०, [illegible]

निबन्ध



सच्ची वीरता—

सच्चे वीर पुरुष धीर, गम्भीर और आजाद होते हैं। उनके मन की गम्भीरता और शान्ति समुद्र की तरह विशाल और गहरी, या आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है। वे कभी चंचल नहीं होते। रामायण में वाल्मीकि जी ने कुम्भकर्ण की गाढ़ी नींद में वीरता का एक चिह्न दिखलाया है। सच है, सच्चे वीरों की नींद आसानी से नहीं खुलती। वे सत्वगुण के क्षीर-समुद्र में ऐसे डूबे रहते हैं कि उनको दुनिया की खबर ही नहीं होती। वे संसार के सच्चे परोपकारी होते हैं। ऐसे लोग दुनिया के तख्ते को अपनी आँख की पलकों से हलचल में डाल देते हैं। जब ये शेर जाग कर गर्जते हैं, तब सदियों तक इनकी आवाज की गूँज सुनाई देती रहती है, और सब आवाजें बंद हो जाती हैं। वीर की चाल की आहट कानों में आती रहती है और कभी मुझे और कभी तुझे मद-मत्त करती है। कभी किसी की और कभी किसी की प्राण-सारंगी वीर के हाथ से बजने लगती है।

देखो, हरा की कंदरा में एक अनाथ, दुनिया से छिपकर, एक अजीब नींद सोता है। जैसे गली में पड़े हुए पत्थर की ओर कोई ध्यान नहीं देता, वैसे ही आम आदमियों की तरह इस अनाथ को कोई न जानता था। एक उदारहृदया धन-सम्पन्ना स्त्री की वह नौकरी करता है। उसकी सांसारिक प्रतिष्ठा सिर्फ एक मामूली गुलाम की भी है। मगर कोई ऐसा दैवी कारण हुआ जिससे इस अनजान और बेपहचान गुलाम की बारी आई। उसकी निद्रा खुली। संसार पर मानो हजारों बिजलियाँ गिरीं। अरब के रेगिस्तान में बारूद की तरह आग लग गई। इस वीर की आँखों की ज्वाला इंद्रप्रस्थ से लेकर स्पेन तक प्रज्वलित हुई।

होता है तब इन कायरों की बस्ती में मानो एक सच्चा वीर पैदा हुआ।

एक बागी गुलाम और एक बादशाह की बातचीत हुई। यह कैदी गुलाम दिल से आजाद था। बादशाह ने कहा—"मैं तुमको अभी जान से मार डालूँगा। तुम क्या कर सकते हो?" गुलाम बोला—"हाँ, मैं फाँसी पर तो चढ़ जाऊँगा; पर तुम्हारा तिरस्कार तब भी कर सकता हूँ।" बस इस गुलाम ने दुनिया के बादशाहों के बल की हद दिखला दी। बस इतना ही जोर और इतनी ही शेखी ये झूठे राजे शरीर को दुःख दे और मार-पीट कर अनजान लोगों को डराते है। और भोले लोग उनसे डरते रहते हैं। चूँकि सब लोग शरीर को अपने जीवन का केन्द्र समझते हैं; इसलिए जहाँ किसी ने उनके शरीर पर जरा जोर से हाथ लगाया वहीं वे मारे डर के अधमरे हो जाते हैं; शरीर-रक्षा की गरज से ये लोग इन राजाओं की ऊपरी मन से पूजा करते हैं। जैसे ये राजा वैसा उनका सत्कार! जिनका बल शरीर को जरा सी रस्सी से लटकाकर मार देने ही भर का है, भला, उनका और उन बलवान् और सच्चे राजाओं का क्या मुकाबला जिनका सिंहासन लोगों के हृदय-कमल की पँखड़ियों पर है? सच्चे राजा अपने प्रेम के जोर से लोगों के दिलों को सदा के लिये बाँध देते हैं। दिलों पर हुकूमत करनेवाली फौज, तोप, बंदूक आदि के बिना ही वे शाहंशाह-जमाना होते है। ऐसे वीर पुरुषों का लक्षण अमेरिका के ऋषि अमरसन ने इस तरह लिखा है :—

"The hero is a mind of such balance that no disturbances can shake his will, but Pleasantly, and as if it were smerrily, he advances to his

कह कर हमसे धर्म-युद्ध रचते और हमें इस देश से निकाल कर इस धरती को फिर से आर्यभूमि बनाते।"

मुकदार शब्दों के प्रयोग और विरुद्ध-सी उक्तियों द्वारा भी उन्होंने कहीं-कहीं चमत्कार उत्पन्न किया है।—

"वे काली-काली मशीनें ही काली बनकर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं।

"कामलालसित होते हुए भी मजदूरी निष्काम होती है।"

"कायर पुरुष कहते हैं—'आगे बढ़े चलो।' वीर कहते हैं—पीछे हटे चलो।"

"राजा में फकीर छिपा है और फकीर में राजा, बड़े-बड़े पंडित में मूर्ख छिपा है और मूर्ख में पंडित, वीर में कायर और कायर में वीर सोता है, पापी में महात्मा और महात्मा में पापी डूबा हुआ है।"

कहीं व्यंग्यात्मक प्रश्नों की झड़ी से कहीं रूपक और उपमाओं की लड़ी से अपने वक्तव्य में जान डाल देना सरदार साहब को खूब आता था। यथार्थ विषयवस्तु इस प्रकार के स्थलों पर गतिहीन हो कर स्थिर सी हो जाती है, फिर भी काव्यात्मक चमत्कार का प्रभाव पाठक के मन को रमाये रहता है—

"तीक्ष्ण गरमी से जलेभुने व्यक्ति आचरण के काले बादलों की बूँदा बाँदी से शीतल हो जाते हैं। मानसोत्पन्न शरद्‌ऋतु से क्लेशातुर हुए पुरुष इसकी सुगन्धितमय अटल वसंत ऋतु के आनन्द का पान करते हैं। आचरण के नेत्र के एक अश्रु से जगत् भर के नेत्र भीग जाते हैं। आचरण के आनन्द नृत्य से उन्मदिष्णु होकर वृक्षों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं।"

लाक्षणिकता इनकी शैली का प्राण है। इस प्रकार का शैलीकार हिन्दी-जगत् में दूसरा नहीं हुआ यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। वास्तव में इनकी लाक्षणिकता ऊपर से थोपी गयी वस्तु नहीं है अपितु भावों के

उमड़ते हुए सागर के शतमुख होकर बह निकलने से उनका समावेश खुद-ब-खुद हो गया है, ठीक उसी तरह जिस तरह उपमा, रूपक, स्मरण, विरोधाभास आदि अनेक अलङ्कार इनकी रचना में अनजाने ही जड़ गये हैं।

इनका भाषाविषयक दृष्टिकोण अत्यन्त उदार रहा है। अंग्रेजी और उर्दू के साहित्य और भाषा का गहन अध्ययन इनकी शैली में अपना रङ्ग देकर फूटा है। अंग्रेजी साहित्य की अनेक साहित्यिक कृतियों एवं तदन्तर्गत पात्रों का यथास्थान संकेत करके तथा उर्दू कवियों की उक्तियाँ उद्धृत करके इन्होंने अपने विषय की पुष्टि की है और उर्दू तथा अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को मुक्तहस्त स्वीकार कर अपनी शैली को 'सैक्युलर' बना दिया है—नुस्खा, बदहज्मी, बे-सरो-सामान, नामोनिशान, दीदार, बर्फानी, समाँ, मयस्सर, तरोताजा, कलाम, गुस्ताखी, शिकस्त, जवाल, इलहाम, लिबास, मज़हब, पर्दानशीन, तूफान, कुदरत आदि अनेक शब्द इनकी रचना में मिलेंगे। संस्कृत के तत्सम, समस्त, सन्धिज सभी प्रकार के शब्द भी इनके निबन्धों में प्रयुक्त हुए हैं—उदारहृदया, सम्पन्ना, ज्योतिष्मती मानसोत्पन्न, उन्मदिष्णु, गौरवान्वित, औदार्य आदि शब्द गिनाये जा सकते हैं किन्तु उर्दू के शब्दों की अपेक्षा ये बहुत कम अनुपात में प्रयुक्त हुए हैं। वास्तव में 'व्यावहारिक भाषा' इनका लक्ष्य था, अतः जनसाधारण में प्रचलित बोधगम्य शब्दावली को ही इन्होंने अधिक प्रश्रय दिया है, संस्कृत के शब्द तो इनकी काव्योचित भावुकता की लपेट में खुद चले आये हैं। चोचला और फलांग जैसे ठेठ बोलचाल के ग्रामीण, और बेरस जैसे देशज शब्द भी इनकी रचना में मिल जाते हैं। 'मुख मोड़ना,' 'खाक-छानना', 'समाँ बाँधना', आँखों में धूल डालना', 'कूच करना', 'मैदान हाथ में होना' आदि मुहावरों द्वारा भी शैली में सजीवता उत्पन्न करने का सफल प्रयास इन्होंने किया है। सारांश यह है कि भावों को अधिक से

अधिक सभ्य बनाने के लिए जहाँ कहीं भी, जो कुछ भी साधन इन्हें मिला उसका उन्होंने बेहिचक प्रयोग किया है।

बात शायद अधिक बढ़ती जा रही है, वास्तव में अध्यापक पूर्णसिंह के चुने-चुने निबन्धों के वैशिष्ट्य-उद्घाटन के लिए गिनी-चुनी पंक्तियाँ पर्याप्त नहीं; यह तो एक स्वतन्त्र पुस्तिका का विषय है, पर जब बात आ पड़ती है तो बहुत कम कहते-कहते भी बहुत कुछ हो जाता है। अब दो एक आवश्यक बातों की ओर संकेत कर यह वक्तव्य समाप्त करना है।

ऊपर सरदार साहब की शैली की विशेषताएँ बताने का प्रयास किया है। किन्तु इनके आधार पर यह समझ लेना चाहिए की इनकी शैली में सब गुण ही गुण है। कहीं-कहीं पर इनका सबसे बड़ा गुण—भावुकता—ही भावों के मार्ग में आड़ा बनकर अड़ गया है और शैली का सबसे बड़ा दोष बन गया है। ऐसे स्थलों पर भाव रहस्यमय से हो गये हैं जो साधारण तो क्या विशिष्ट पाठक की पकड़ में भी मुश्किल से ही—और शायद नहीं—आ पायेंगे। उदाहरण के रूप में पीछे उद्धृत बुद्धदेव और हाफ़िज़ शीराज़ी आदि वाला अवतरण प्रस्तुत किया जा सकता है। कहीं-कहीं तो इनकी भावुकता इतनी बढ़ गयी है उसकी 'सनक' इतनी देर तक सवार रहती है कि सन्तुलित भावोंवाला पाठक गूढ़ तथा असम्बद्ध-से लम्बे-लम्बे भावमय कथनों को 'प्रलाप' जैसा समझने लग जाय तो आश्चर्य नहीं। भाषाविषयक स्खलन भी मिलते हैं। कहीं-कहीं कारकसूचक विभक्तियों का ऐसा जमघट हो गया कि मूलभाव तक पहुँचने में पाठक को कठिनाई होती है। यथा—

''आचरण के विकास के लिये नाना प्रकार की सामग्रियों का, जो संसारसंभूत शारीरिक, प्राकृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन में वर्तमान हैं, उन सबकी [सबका]—क्या एक पुरुष और क्या

एक जाति के आचरण के विकास के साधनों के सम्बन्ध में विचार करना होगा।"

व्याकरणविषयक स्खलन भी यत्र-तत्र मिलते हैं, जैसे—"इसी की उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाते हैं," इस वाक्य में क्रिया का रूप स्त्रीलिंग के स्थान में पुंल्लिंग प्रयुक्त हुआ है। भाषा-विशेषज्ञों या अलकार-शास्त्रियों को ये दोष बहुत कुछ अखर सकते हैं परन्तु सच तो यह है कि इन निबन्धों की अनगिन विशेषताओं में इस प्रकार के स्खलन नगण्य ही हैं—"एकोऽपि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।"

एक बात इस संकलन के सम्बन्ध में भी। अध्यापक पूर्णसिंह के निबन्धों का यह सर्व प्रथम संकलन और सम्पादन है। इसी से यथेष्ट महत्त्वपूर्ण है, फिर इसके सम्पादक का हिन्दी-संस्कृत के साहित्य का मर्मज्ञ होना सोने में सुगन्ध का योग करता ही है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्य बड़ी हड़बड़ी या जल्दी में सम्पन्न हुआ। अनेक स्थलों पर टिप्पणी की आवश्यकता है। लेखक के जिन स्खलन-सूचक प्रयोगों और कथनों पर सम्पादक ने जो प्रश्न-सूचक चिह्न लगाये हैं, ध्यान देने पर उनमें से कई एक व्यर्थ सिद्ध होते हैं। फिर भी सब कुछ मिला कर यह पुस्तक संग्रहयोग्य है। आशा है इसका दूसरा संस्करण और भी अधिक परिष्कृतरूप में सामने आयेगा।

विजया दशमी, २०१३।

हरवंशलाल शर्मा
एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०

निबन्ध



सच्ची वीरता—

सच्चे वीर पुरुष धीर, गम्भीर और आजाद होते हैं। उनके मन की गम्भीरता और शान्ति समुद्र की तरह विशाल और गहरी, या आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है। वे कभी चंचल नहीं होते। रामायण में वाल्मीकि जी ने कुम्भकर्ण की गाढ़ी नींद में वीरता का एक चिह्न दिखलाया है। सच है, सच्चे वीरों की नींद आसानी से नहीं खुलती। वे सत्त्वगुण के क्षीर-समुद्र में ऐसे डूबे रहते हैं कि उनको दुनिया की खबर ही नहीं होती। वे संसार के सच्चे परोपकारी होते हैं। ऐसे लोग दुनिया के तख्ते को अपनी आँख की पलकों से हलचल में डाल देते हैं। जब ये शेर जाग कर गर्जते हैं, तब सदियों तक इनकी आवाज की गूँज सुनाई देती रहती है, और सब आवाजें बंद हो जाती हैं। वीर की चाल की आहट कानों में आती रहती है और कभी मुझे और कभी तुझे मद-मत्त करती है। कभी किसी की और कभी किसी की प्राण-सारंगी वीर के हाथ से बजने लगती है।

देखो, हरा की कंदरा में एक अनाथ, दुनिया से छिपकर, एक अजीब नींद सोता है। जैसे गली में पड़े हुए पत्थर की ओर कोई ध्यान नहीं देता, वैसे ही आम आदमियों की तरह इस अनाथ को कोई न जानता था। एक उदारहृदया धन-सम्पन्ना स्त्री की वह नौकरी करता है। उसकी सांसारिक प्रतिष्ठा सिर्फ एक मामूली गुलाम की सी है। मगर कोई ऐसा दैवी कारण हुआ जिससे इस अनजान और बेपहचान गुलाम की बारी आई। उसकी निद्रा खुली। संसार पर मानो हजारों बिजलियाँ गिरीं। अरब के रेगिस्तान में बारूद की तरह आग लग गई। इस वीर की आँखों की ज्वाला इंद्रप्रस्थ से लेकर स्पेन तक प्रज्वलित हुई।

इस अज्ञान और गुम हुरा की कंदरा में सोनेवाले ने एक आवाज दी। कुल पृथ्वी भय से काँपने लगी। हाँ जब पैगम्बर मुहम्मद ने "अल्लाहू अकबर" का गीत गाया तब कुल संसार चुप हो गया। और, कुछ देर बाद, प्रकृति उसकी आवाज की गूँज को सब दिशाओं में ले उड़ी। पक्षी "अल्लाहू" गाने लगे और मुहम्मद के पैगाम को इधर-उधर ले उड़े। पर्वत उसकी वाणी को सुनकर पिघल पड़े और नदियाँ "अल्लाहू, अल्लाहू" का अलाप करती हुई पर्वतों से निकल पड़ीं। जो लोग उसके सामने आए वे उसके दास बन गए। चन्द्र और सूर्य ने बारी-बारी से उठकर सलाम किया। इस वीर का बल देखिए कि सदियों के बाद भी संसार के लोगों का बहुत सा हिस्सा उनके पवित्र नाम पर जीता है और अपने छोटे से जीवन को अति तुच्छ समझकर अनदेखे, अनजान, केवल सुने-सुनाए, नाम पर कुर्बान कर देने को अपने जीवन का सबसे उत्तम फल समझता है।

सत्त्वगुण के समुद्र में जिनका अंतःकरण निमग्न हो गया वही महात्मा, साधु और वीर है। ये लोग अपने क्षुद्र जीवन को परित्याग कर ऐसा ईश्वरीय जीवन पाते है कि उनके लिए संसार के कुल अगम्य मार्ग साफ हो जाते है। आकाश उनके ऊपर बादलों के छाते लगाता है। प्रकृति उनके मनोहर माथे पर राज-तिलक लगाती है। हमारे असली और सच्चे राजा ये ही साधु पुरुष हैं। हीरे और लाल से जड़े हुए, सोने और चाँदी से जर्क बर्क सिंहासन पर बैठने वाले दुनिया के राजों को तो, जो गरीब किसानों की कमाई हुई दौलत पर पिंडोपजीवी होते है, लोगों ने अपनी मूर्खता से वीर बना रखा है। यह जरी, मखमल और जेवरों से लदे हुए माँस के पुतले तो हरदम काँपते रहते है। इंद्र की तरह ऐश्वर्यवान् और बलवान् होने पर भी दुनिया के छोटे "जार्ज" बड़े कायर होते है। क्यों न हो, इनकी हुकूमत लोगों के दिलों पर नहीं होती। दुनिया के राजाओं के बल की दौड़ लोगों के शरीर तक है। हाँ, जब कभी किसी अकबर का राज लोगों के दिलों पर

होता है तब इन कायरों की बस्ती में मानों एक सच्चा वीर पैदा हुआ।

एक बागी गुलाम और एक बादशाह की बातचीत हुई। यह कैदी गुलाम दिल से आजाद था। बादशाह ने कहा—"मैं तुमको अभी जान से मार डालूँगा। तुम क्या कर सकते हो?" गुलाम बोला—"हाँ, मैं फाँसी पर तो चढ़ जाऊँगा; पर तुम्हारा तिरस्कार तब भी कर सकता हूँ।" बस इस गुलाम ने दुनिया के बादशाहों के बल की हद दिखला दी। बस इतना ही जोर और इतनी ही शेखी ये झूठे राजे शरीर को दुःख दें और मार-पीट कर अनजान लोगों को डराते हैं। और भोले लोग उनसे डरते रहते हैं। चूँकि सब लोग शरीर को अपने जीवन का केन्द्र समझते हैं; इसलिए जहाँ किसी ने उनके शरीर पर जरा जोर से हाथ लगाया वहीं वे मारे डर के अधमरे हो जाते हैं; शरीर-रक्षा की गरज से ये लोग इन राजाओं की ऊपरी मन से पूजा करते हैं। जैसे ये राजा वैसा उनका सत्कार! जिनका बल शरीर को जरा सी रस्सी से लटकाकर मार देने ही भर का है, भला, उनका और उन बलवान् और सच्चे राजाओं का क्या मुकाबला जिनका सिंहासन लोगों के हृदय-कमल की पँखड़ियों पर है? सच्चे राजा अपने प्रेम के जोर से लोगों के दिलों को सदा के लिये बाँध देते हैं। दिलों पर हुकूमत करनेवाली फौज, तोप, बंदूक आदि के बिना ही वे शाहंशाह-जमाना होते हैं। ऐसे वीर पुरुषों का लक्षण अमेरिका के ऋषि अमरसन ने इस तरह लिखा है:—

"The hero is a mind of such balance that no disturbances can shake his will, but Pleasantly, and as if it were smerrily, he advances to his

own music, alike in frightful alarms and in the tipsy mists of universal dissoluteness."[1]

मंसूर ने अपनी मौज में आकर कहा कि—"मैं खुदा हूँ।" दुनिया के बादशाह ने कहा—"यह काफिर है।" मगर मंसूर ने अपने कलाम को बन्द न किया। पत्थर मार मार कर दुनिया ने उसके शरीर की बुरी दशा की, परन्तु उस मर्द के हर बोल से यही शब्द निकले—"अनलहक"—"अहं ब्रह्मास्मि" "मै ही ब्रह्म हूँ"। मंसूर का सूली पर चढ़ना उसके लिये सिर्फ खेल था। बादशाह ने समझा कि मंसूर मारा गया।

शम्स तबरेज को भी ऐसा ही काफिर समझ कर बादशाह ने हुक्म दिया कि इसकी खाल उतार दो। शम्स ने खाल उतारी और बादशाह को, दर्वाजे पर आए कुत्ते की तरह भिखारी समझकर, वह खाल खाने के लिए दे दी। देकर वह अपनी यह गजल बराबर गाता रहा—"भीख माँगनेवाला तेरे दरवाजे पर आया है; ऐ शाहेदिल! कुछ इसको दे दे।" खाल उतार कर फेंक दी! वाह रे सत्पुरुष!

भगवान् शंकर जब गुजरात की तरफ यात्रा कर रहे थे तब एक कापालिक हाथ जोड़े सामने आकर खड़ा हुआ। भगवान् ने कहा "माँग क्या माँगता है?" उसने कहा—"हे भगवान्! आज कल के राजा लोग बड़े कंगाल हैं। उनसे अब हमें दान नही मिला। आप ब्रह्मज्ञानी और सबसे बड़े दानी है। इसलिए मैं आप के पास आया हूँ। आप अपनी कृपा से मुझे अपना सिर दान करें जिसकी भेंट चढ़ाकर मैं अपनी देवी को प्रसन्न करूँगा और अपना यज्ञ पूरा करूँगा।" भगवान् ने मौज में आकर कहा

१—वीर का मस्तिष्क इतना सन्तुलित होता है कि कोई भी बाधा उसकी इच्छा-शक्ति को डिगा नहीं सकती, आनन्द-पूर्वक, हँसते-खेलते वह अपनी ही धुन में मस्त भयानक चेतावनी और मादक विश्वव्यापी विषयासक्ति के बीच समानरूप से निर्लिप्त आगे बढ़ा चला जाता है।

"अच्छा कल, यह सिर उतारकर ले जाना और काम सिद्ध कर लेना।"

एक दफे दो वीर पुरुष अकबर के दरबार में आए। वे लोग रोजगार की तलाश में थे। अकबर ने कहा—"अपनी-अपनी वीरता का सुबूत दो।" बादशाह ने कैसी मूर्खता की! वीरता का भला वे क्या सुबूत देते? परन्तु दोनों ने तलवारें निकाल लीं और एक दूसरे के सामने कर उनकी तेज धार पर दौड़ गये और वहीं बादशाह के सामने क्षण भर में अपने खून में ढेर हो गए।

ऐसे दैवी वीर रुपया, पैसा, माल, धन का दान नहीं दिया करते। जब वे दान देने की इच्छा करते हैं तब अपने आपको हवन कर देते हैं। बुद्ध महाराज ने जब एक राजा को मृग मारते देखा तब अपना शरीर आगे कर दिया जिसमें मृग बच जाय, बुद्ध का शरीर चाहे चला जाय। ऐसे लोग कभी बड़े मौकों का इंतिजार नहीं करते; छोटे मौकों को ही बड़ा बना देते हैं।

जब किसी का भाग्योदय हुआ और उसे जोश आया तब जान लो कि संसार में एक तूफान आ गया। उसकी चाल के सामने फिर कोई रुकावट नहीं आ सकती। पहाड़ों की पसलियाँ तोड़कर ये लोग हवा के बगोले की तरह निकल जाते हैं, उनके बल का इशारा भूचाल देता है और उनके दिल की हरकत का निशान समुद्र का तूफान देता है। कुदरत की और कोई ताकत उनके सामने फड़क नहीं सकती। सब चीजें थम जाती हैं। विधाता भी साँस रोककर उनकी राह को देखता है। यूरप में जब रोम के पोप का जोर बहुत बढ़ गया था तब उसका मुकाबला कोई भी बादशाह न कर सकता था। पोप की आँखों के इशारे से यूरप के बादशाह तख्त से उतार दिये जा सकते थे। पोप का सिक्का यूरप के लोगों पर ऐसा बैठ गया था कि उसकी बात को लोग ब्रह्म-वाक्य से भी बढ़कर समझते थे और पोप को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे। लाखों ईसाई साधु-संन्यासी और यूरप के तमाम गिर्जे पोप के हुक्म की पाबन्दी करते थे। जिस तरह चूहे की जान

बिल्ली के हाथ में होती है उसी तरह पोप ने यूरपवासियों की जान अपने हाथ में कर ली थी। इस पोप का बल और आतंक बड़ा भयानक था मगर जरमनी के एक छोटे से मन्दिर के एक कंगाल पादरी की आत्मा जल उठी। पोप ने इतनी लीला फैलाई थी कि यूरप में स्वर्ग और नरक के टिकट बड़े बड़े दामों पर बिकते थे; टिकट बेच बेचकर यह पोप बड़ा विषयी हो गया था। लूथर के पास जब टिकट बिक्री होने को पहुँचे तब उसने पहले एक चिट्ठी लिखकर भेजी कि ऐसे काम झूठे तथा पापमय है और बन्द होने चाहिए। पोप ने इसका जवाब दिया—"लूथर! तुम गुस्ताखी के इस बदले आग में जिन्दा जला दिये जाओगे।" इस जवाब से लूथर की आत्मा की आग और भी भड़की। उसने लिखा—"अब मैंने अपने दिल में निश्चय कर लिया है कि तुम ईश्वर के तो नहीं किन्तु शैतान के प्रतिनिधि हो। अपने आपको ईश्वर के प्रतिनिधि कहनेवाले मिथ्यावादी! जब मैंने तुम्हारे पास सत्यार्थ का संदेश भेजा तब तुमने आग और जल्लाद के नामों से जबाब दिया। इससे साफ प्रतीत होता है कि तुम शैतान की दलदल पर खड़े हो, न कि सत्य की चट्टान पर। यह लो तुम्हारे टिकटों के गट्ठे (Emparchmented Lies) मैंने आग में फेंके! जो मुझे करना था मैंने कर दिया; जो अब तुम्हारी इच्छा हो करो। मैं सत्य की चट्टान पर खड़ा हूँ।" इस छोटे से संन्यासी ने वह तूफान यूरप में पैदा कर दिया जिसकी एक लहर से पोप का सारा जंगी बेड़ा चकनाचूर हो गया! तूफान में एक तिनके की तरह वह न मालूम कहाँ उड़ गया।

महाराज रणजीतसिंह ने फौज से कहा—"अटक के पार जाओ।" अटक चढ़ी हुई थी और भयङ्कर लहरें उठ रही थीं। जब फौज ने कुछ उत्साह जाहिर न किया तब उस वीर को जरा जोश आया। महाराज ने अपना घोड़ा दरिया में डाल दिया। कहा जाता है कि अटक सूख गई और सब पार निकल गये।

दुनिया में जंग के सब सामान जमा हैं। लाखों आदमी मर मारने को तैयार हो रहे हैं। गोलियाँ पानी की बूँदों की तरह मूसलधार बरस रही हैं। यह देखो, वीर को जोश आया। उसने कहा—"हाल्ट" (ठहरो)। तमाम फौज निःस्तब्ध होकर सकते की हालत में खड़ी हो गई। एल्प्स के पहाड़ों पर फौज ने चढ़ना ज्योंही असम्भव समझा, त्योंही वीर ने कहा—"एल्प्स है ही नहीं" फौज को निश्चय हो गया कि एल्प्स है ही नहीं और सब लोग पार हो गये ?

एक भेड़ चरानेवाली और सतोगुण में डूबी हुई युवती कन्या के दिल में जोश आते ही कुल फ्रांस एक भारी शिकस्त में बच गया। अपने आपको हर घड़ी और हर पल महान् से भी महान् बनाने का नाम वीरता है। वीरता के कारनामे तो एक गौड़ बात है। असल वीर तो इन कारनामों को अपनी दिनचर्या में लिखते भी नहीं। दरख्त तो जमीन से रस ग्रहण करने में लगा रहता है। उसे यह ख्याल ही नहीं होता कि मुझमें कितने फल या फूल लगेंगे और कब लगेंगे। उसका काम तो अपने आपको सत्य में रखना है—सत्य को अपने अंदर कूट कूट कर भरना है और अंदर ही अंदर बढ़ना है। उसे इस चिंता से क्या मतलब कि कौन मेरे फल खायगा या मैंने कितने फल लोगों को दिये।

वीरता का विकास नाना प्रकार से होता है। कभी तो उसका विकास लड़ने-मरने में, खून बहाने में, तलवार-तोप के सामने जान गँवाने में होता है; कभी प्रेम के मैदान में उसका झंडा खड़ा होता है। कभी साहित्य और संगीत में वीरता खिलती है। कभी जीवन के गूढ़ तत्त्व और सत्य की तलाश में बुद्ध जैसे राजा विरक्त न [?] होकर वीर हो जाते हैं। कभी किसी आदर्श पर और कभी किसी पर वीरता अपना फरहरा लहराती है। परन्तु वीरता एक प्रकार का इल्हाम (inspiration) है। जब कभी इसका विकास हुआ तभी एक

नया कमाल नजर आया; एक नया जलाल पैदा हुआ; एक नई रौनक, एक नया रंग, एक नई बहार, एक नई प्रभुता देश में छा गई। वीरता हमेशा निराली और नई होती है। नयापन भी वीरता का एक खास रंग है। हिन्दुओं के पुराणों का वह आलङ्कारिक खयाल, जिसमें पुराणकारों ने ईश्वरावतारों को अजीब-अजीब और भिन्न भिन्न लिबास दिये हैं, सच्ची मालूम होती है; क्योंकि वीरता का एक विकास दूसरे विकास से कभी किसी तरह मिल नहीं सकता। वीरता की कभी नकल नहीं हो सकती, जैसे मन की प्रसन्नता कभी कोई उधार नहीं ले सकता। वीरता देश-काल के अनुसार संसार में जब कभी प्रकट हुई तभी एक नया स्वरूप लेकर आई, जिसके दर्शन करते ही सब लोग चकित हो गये—कुछ बन न पड़ा और वीरता के आगे सिर झुका दिया।

जापानी वीरता की मूर्ति पूजते हैं। इस मूर्ति का दर्शन वे चेरी के फूल (Cherry flower) की शांत हँसी में करते हैं। क्या ही सच्ची और कौशलमयी पूजा है! वीरता सदा जोर से भरा हुआ ही उपदेश नहीं करती। वीरता कभी-कभी हृदय की कोमलता का भी दर्शन कराती है। ऐसी कोमलता देखकर सारी प्रकृति कोमल हो जाती है; ऐसी सुन्दरता देखकर लोग मोहित हो जाते हैं। जब कोमलता और सुन्दरता के रूप में वह दर्शन देती है तब चेरी-फूल से भी ज्यादा नाजुक और मनोहर होती है। जिस शख्स ने यूरप को 'क्रूसेडज' Crusades) के लिये हिला दिया वह उन सबसे बड़ा वीर था जो लड़ाई में लड़े थे। इस पुरुष में वीरता ने आँसुओं और आहो जारियों का लिबास लिया। देखो, एक छोटा सा मामूली आदमी योरप में जाकर रोता है कि हाय हमारे तीर्थ हमारे वास्ते खुले नहीं और पालिस्टन के राजा योरप के यात्रियों को दिक करते हैं। इस आँसू-भरी अपील को सुनकर सारा योरप उसके साथ रो उठा। यह आला दरजे की वीरता है।

नैटिंगेल के साये को बीमार लोग सब दवाइयों से उत्तम समझते थे। उसके दर्शनों ही से कितने ही बीमार अच्छे हो जाते थे। वह आला दर्जे का सच्चा परन्द है जो बीमारों के सिरहाने खड़ा होकर दिन-रात गरीबों की निष्काम सेवा करता है और गंदे जख्मों को जरूरत के वक्त अपने मुख से चूसकर साफ करता है। लोगों के दिलों पर ऐसे प्रेम का राज्य अटल है। यह वीरता पर्दानशीन हिन्दुस्तानी औरत की तरह चाहे कभी दुनिया के सामने न आवे इतिहास के वर्कों के काले हर्फों में न आये, तो भी संसार ऐसे ही बल से जीता है।

वीर पुरुष का दिल सबका दिल हो जाता है। उसका मन सबका मन हो जाता है। उसके ख्याल सबके ख्याल हो जाते हैं सबके संकल्प उसके संकल्प हो जाते हैं। उसका बल सबका बल हो जाता है वह सबका और सब उसके हो जाते हैं।

वीरों के बनाने के कारखाने कायम नहीं हो सकते। वे तो देवदार के दरख्तों की तरह जीवन के अरण्य में खुद-ब-खुद पैदा होते है और बिना किसी के पानी दिये, बिना किसी के दूध पिलाये, बिना किसी के हाथ लगाये, तैयार होते हैं। दुनिया के मैदान में अचानक ही सामने आकर वे खड़े हो जाते हैं, उनका सारा जीवन अन्तर ही अन्तर होता है। बाहर तो जवाहिरात की खानों की ऊपरी जमीन की तरह कुछ भी दृष्टि में नहीं आता। वीर की जिन्दगी मुश्किल से कभी-कभी बाहर नजर आती है। नहीं उसका स्वभाव छिपे रहने का है।

"I was a gem conceled,
Me my burning ray revealed"[२]

(वह लाल गुदड़ियों के भीतर छिपा रहता है।) कन्दराओं में,

२—मैं एक छिपा रत्न था; मुझे मेरी देदीप्यमान किरणों ने प्रकट किया।

गारों में, छोटी-छोटी झोपड़ियों में बड़े-बड़े वीर महात्मा छिपे रहते हैं। पुस्तकों और अखबारों को पढ़ने से या विद्वानों के व्याख्यानों को सुनने से तो बस ड्राइंग-हाल (Drawing Hall Knights) के वीर पैदा होते हैं। उनकी वीरता अनजान लोगों से अपनी स्तुति सुनने तक खतम हो जाती है। असली वीर तो दुनिया की बनावट और लिखावट के मखौलों के लिये नहीं जीते।

It is not in your market that the heroes carry their blood too.

"I enjoy my own freedom at the cost of my own reputation."[3]

हर दफे दिखाव और नाम की खातिर छाती ठोककर आगे बढ़ना और फिर पीछे हटना परले दरजे की बुजदिली है। वीर तो यह समझता है कि मनुष्य का जीवन एक जरा सी चीज है। वह सिर्फ एक बार के लिये काफी है। मानों इस बंदूक में एक ही गोली है। हाँ, कायर पुरुष इसको बड़ा ही कीमती और कभी न टूटनेवाला हथियार समझते हैं। हर घड़ी आगे बढ़कर और यह दिखाकर कि हम बड़े हैं, वे फिर पीछे इस गरज से हट जाते हैं कि उनका अनमोल जीवन किसी और भी उत्तम काम के लिये बच जाय। बादल गरज गरज कर ऐसे ही चले जाते है, परन्तु बरसनेवाले बादल जरा देर में बारह इंच तक बरस जाते हैं।

कायर पुरुष कहते है—"आगे बढ़े चलो।" वीर कहते है—"पीछे हटे चलो।" कायर कहते है—"उठाओ तलवार।" वीर कहते है—

३—वीरों के रक्त का मूल्य आपके बाजारों में नहीं लग सकता। अपने सम्मान का बलिदान कर मैं आत्म-स्वातंत्र्य का आनन्द भोगता हूँ।

"सिर आगे करो।" वीर का जीवन तो प्रकृति ने अपनी शक्तियों को एकत्र संचय (Conserve) करने को बनाया है। सम्भव है कि और पदार्थ उसने अपनी शक्तियों को (Dessipate) फिजूल खो देने के लिए बनाये हों। मगर वीर पुरुष का शरीर कुदरत की कुल ताकतों का समूह (Consernation) है। कुदरत का यह मरकज हिल नहीं सकता। सूर्य्य का चक्कर हिल जाय तो कोई बात नहीं परन्तु वीर के दिल में जो दैवी केन्द्र (Divine Centre) है वह अचल है। कुदरत के और पदार्थों की पालिसी चाहे आगे बढ़ने की हो, अर्थात् अपने बल को नष्ट करने की हो, मगर वीरों की पालिसी बल को हर तरह इकट्ठा करने और बढ़ाने की होती है। वीर तो अपने अन्दर ही 'मार्च' करते हैं। क्योंकि हृदयाकाश के केन्द्र में खड़े होकर वे कुल संसार को हिला सकते हैं।

बेचारी मरियम का लाड़ला, खूबसूरत जवान, अपने मद में मतवाला और अपने आपको शाहंशाह हकीकी कहनेवाला ईसा मसीह क्या उस समय कमजोर मालूम होता है जब भारी सलीब उठाकर कभी गिरता, कभी जख्मी होता और कभी बेहोश हो जाता है? कोई पत्थर मारता है, कोई ढेला मारता है। कोई थूकता है, मगर उस मर्द का दिल नहीं हिलता। कोई क्षुद्रहृदय और कायर होता तो अपनी बादशाहत के बल की गुत्थियाँ खोल देता, अपनी ताकत को जायल कर देता; और सम्भव है कि एक निगाह से उस सल्तनत के तख्ते को उलट देता और मुसीबत को टाल देता, परन्तु जिसको हम मुसीबत जानते हैं उसको वह मखौल समझता था। "सूली मुझे है सेज पिया की, सोने दो मीठी-मीठी नींद है आती।" अमर ईसा को भला दुनिया के विषय-विकार में गर्क लोग क्या जान सकते थे? अगर चार चिड़ियाँ मिलकर मुझे फाँसी का हुक्म सुना दें और मैं उसे सुनकर रो दूँ या डर जाऊँ तो मेरा गौरव चिड़ियों से भी कम हो जाय। जैसे चिड़ियाँ मुझे फाँसी देकर उड़ गई वैसे ही बादशाह और बादशाहतें

आज खाक में मिल गई हैं। सचमुच ही वह छोटा सा बाबा लोगों का सच्चा बादशाह है। चिड़ियों और जानवरों की कचहरियों के फैसलों से जो डरते या मरते हैं वे मनुष्य नहीं हो सकते। राजाजी ने जहर के प्याले से मीराबाई को डराना चाहा। मगर वाहरी सचाई! मीरा ने इस जहर को भी अमृत मानकर पी लिया। वह शेर और हाथी के सामने किये गये [की गई]। मगर वाह रे प्रेम! मस्त हाथी और शेर ने देवी के चरणों की धूल को अपने मस्तक पर मला और अपना रास्ता लिया। इस वास्ते वीर पुरुष आगे नहीं, पीछे जाते हैं। अन्दर ध्यान करते हैं। मारते नहीं, मरते हैं। वीर क्या जो टीन के बर्तन की तरह झट गरम और झट ठंडा हो जाता है। सदियों नीचे आग जलती रहे तो भी शायद ही वीर गरम हो और हजारों वर्ष बर्फ उस पर जमती रहे तो भी क्या मजाल जो उसकी वाणी तक ठंडी हो। उसे खुद गरम और सर्द होने से क्या मतलब? कारलायल को जो आजकल की सभ्यता पर गुस्सा आया तो दुनिया में एक नई शक्ति और एक नई जबान पैदा हुई। कारलायल अँगरेज जरूर है; पर उसकी बोली सबसे निराली है। उसके शब्द मानों आग की चिनगारियाँ हैं जो आदमी के दिलों में आग सी लगा देती हैं। सब कुछ बदल जाय मगर कारलायल की गरमी कभी कम न होगी! यदि हजार वर्ष संसार में दुखड़े और दर्द रोये जायँ तो भी बुद्धि की शान्ति और दिल की ठंडक एक दर्जा भी इधर-उधर न होगी। यहाँ आकर फिजिक्स (Physics) के नियम रो देते हैं। हजारों वर्ष आग जलती रहे तो भी थर्मामीटर जैसा का तैसा ही रहेगा। बाबर के सिपाहियों ने और लोगों के साथ गुरु नानक को भी बेगार में पकड़ लिया। उनके सिर पर बोझ रखा और कहा—"चलो।" आप चल पड़े। दौड़ धूप, बोझ, मुसीबत, बेगार में पकड़ी हुई स्त्रियों का रोना, शरीफ लोगों का दुःख, गाँव के गाँव का जलना सब किस्म की दुख-

दाई बातें हो रही है। मगर किसी का कुछ असर नहीं हुआ। गुरुनानक ने अपने साथी मर्दाना से कहा--"मर्दाना सारंगी बजाओ, हम गाते है।" उस भीड़ में सारंगी बज रही है और गा रहे हैं। वाह री शांति। अगर कोई छोटा सा बच्चा नैपोलियन के कंधे पर चढ़ कर उसके सिर के बाल खींचे तो क्या नेपोलियन इसको अपनी बेइज्जती समझकर उस बालक को जमीन पर पटक देगा, ताकि लोग उसको बड़ा वीर कहें? इसी तरह सच्चे वीर जब उनके बाल दुनिया की चिड़ियाँ नोचती हैं, तब कुछ परवा नहीं करते; क्योंकि उनका जीवन आसपास वालों के जीवन से निहायत ही बढ़-चढ़ ऊँचा और बलवान् होता है। भला ऐसी बातों पर वीर कब हिलते। जब उनकी मौज आई तभी मैदान उनके हाथ है।

जापान के एक छोटे से गाँव की एक झोपड़ी में छोटे कद का एक जापानी रहता था। उसका नाम ओशियो था। वह पुरुष बड़ा अनुभवी और ज्ञानी था। उसे दीन और दुनिया से कुछ सरोकार न था। बड़े कड़े मिजाज का, स्थिर, धीर और अपने खयालात के समुद्र में डूबा रहनेवाला पुरुष था, आसपास रहनेवाले लोगों के लड़के इस साधु के पास आया-जाया करते थे और वह उनको मुफ्त पढ़ाता था। जो कुछ मिल जाता था वही खा लेता था। दुनिया की व्यवहारिक दृष्टि से वह एक किस्म का निखट्टू था। क्योंकि इस पुरुष ने संसार का कोई बड़ा काम नहीं किया था। उसकी सारी उम्र शान्ति और सतोगुण में गुजर गई थी। लोग समझते थे कि वह एक मामूली आदमी है। एक दफे इत्तिफाक से दो-तीन फसलों के न होने से इस फकीर के आस पास के मुल्क में दुर्भिक्ष पड़ गया। दुर्भिक्ष बड़ा भयानक था। लोग बड़े दुखी हुए। लाचार होकर इस नंगे, कंगाल फकीर के पास मदद माँगने आए। उसके दिल में कुछ खयाल हुआ। उनकी मदद करने को वह तैयार हो गया।

पहले वह ओसाका नामक शहर के बड़े-बड़े धनाढ्य और भद्र पुरुषों के पास गया और उनसे मदद माँगी। इन भलेमानसों ने वादा तो किया, पर उसे पूरा न किया। ओशियो फिर उनके पास कभी न गया। उसने बादशाह के वजीरों को पत्र लिखे कि इन किसानों को मदद देनी चाहिए। परन्तु बहुत दिन गुजर जाने पर भी जवाब न आया। ओशियो ने अपने कपड़े और किताबें नीलाम कर दीं। जो कुछ मिला, मुट्ठी भरकर उन आदमियों की तरफ फेंक दिया। भला इससे क्या हो सकता था? परन्तु ओशियो का दिल इससे पूर्ण शिव रूप हो गया। यहाँ इतना जिक्र कर देना काफी होगा कि जापान के लोग अपने बादशाह को पिता की तरह पूजते हैं। उनके आत्मा की यह एक आदत है। ऐसी कौम के हजारों आदमी इस वीर के पास जमा हैं। ओशियो ने कहा—"सब लोग हाथ में बाँस लेकर तैयार हो जाओ और बगावत का झंडा खड़ा कर दो।" कोई भी चूँ व चरा न कर सका। बगावत का झंडा खड़ा हो गया। ओशियो एक बाँस पकड़कर सबके आगे किओटो जाकर बादशाह के किले पर हमला करने के लिये चला। इस फकीर जनरल की फौज की चाल को कौन रोक सकता था? जब शाही किले के सरदार ने देखा तब उसने रिपोर्ट की और आज्ञा माँगी कि ओशियो और उसकी बागी फौज पर बंदूकों की बाढ़ छोड़ी जाय? हुक्म हुआ कि "नहीं, ओशियो तो कुदरत के सब्ज वर्कों को पढ़नेवाला है। वह किसी खास बात के लिये चढ़ाई करने आया होगा। उसको हमला करने दो और आने दो।" जब ओशियो किले में दाखिल हुआ तब वह सरदार इस मस्त जनरल को पकड़कर बादशाह के पास ले गया। उस वक्त ओशियो ने कहा—राजभांडार, जो अनाज से भरे हुए हैं, गरीबों की मदद के लिये क्यों नहीं खोल दिये जाते?

जापान के राजा को डर सा लगा। एक वीर उसके सामने खड़ा था जिसकी आवाज में दैवी शक्ति थी। हुक्म हुआ कि शाही भांडार खोल दिये जायँ और सारा अन्न दरिद्र किसानों को बाँटा जाय। सब सेना और पुलिस धरी की धरी रह गई। मंत्रियों के दफ्तर लगे के लगे रहे। ओगियो ने जिस काम पर कमर बाँधी उसको कर दिखाया। लोगों की विपत्ति कुछ दिनों के लिये दूर हो गई। ओगियो के हृदय की सफाई, सचाई और दृढ़ता के सामने भला कौन ठहर सकता था? सत्य की सदा जीत होती है। यह भी वीरता का एक चिह्न है। रूस के ज़ार ने सब लोगों को फाँसी दे दी। किन्तु टाल्स्टाय को वह दिल से प्रणाम करता था; उनकी बातों का आदर करता था। जय वहीं होती है जहाँ हृदय की पवित्रता और प्रेम है। दुनिया किसी कूड़े के ढेर पर नहीं खड़ी कि जिस मुर्गे ने बाँग दी वहीं सिद्ध हो गया। दुनिया धर्म अटल आध्यात्मिक नियमों पर खड़ी है। जो अपने आपको उन नियमों के साथ अभेद करके खड़ा हुआ वह विजयी हो गया। आजकल लोग कहते हैं काम करो, काम करो। पर हमें तो ये बातें निरर्थक मालूम होती हैं। पहले काम करने का बल पैदा करो—अपने अन्दर ही अन्दर वृक्ष की तरह बढ़ो। आजकल भारतवर्ष में परोपकार करने का बुखार फैल रहा है। जिसको १०५ डिग्री का यह बुखार चढ़ा वह आजकल के भारतवर्ष का ऋषि हो गया। आजकल भारतवर्ष में अखबारों की टकसाल में गढ़े हुए वीर दर्जनों मिलते हैं। जहाँ किसी ने एक दो काम किये और आगे बढ़कर छाती दिखाई नहीं हिन्दुस्तान के सारे अखबारों ने 'हीरो' (Hero) की पुकार मचाई। बस एक नया वीर तैयार हो गया। यह तो पागलपन की लहरें हैं। अखबार लिखनेवाले मामूली सिक्के के मनुष्य होते हैं। उनकी स्तुति और निन्दा पर क्यों मरे जाते हो? अपने जीवन को अखबारों के छोटे-छोटे पैराग्राफों के ऊपर क्यों लटका रहे हो? क्या यह सच नहीं कि हमारे आज कल के वीरों की जानें अखबारों के लेखों में है? जो इन्होंने रंग बदला तो हमारे

वीरों के रंग बदले, ओठ खुश्क हुए और वीरता की आशायें टूट पड़ीं।

प्यारे, अन्दर के केन्द्र की ओर अपनी चाल उलटी और इसी दिखावटी और बनावटी जीवन की चंचलता में अपने आप को न खो दो। वीर नहीं तो वीरों के अनुगामी हो और वीरता के काम नहीं तो धीरे-धीरे अपने अन्दर वीरता के परमाणुओं को जमा करो।

जब हम कभी वीरों का हाल सुनते है तब हमारे अन्दर भी वीरता की लहरें उठती है और वीरता का रंग चढ़ जाता है। परन्तु वह चिर-स्थायी नहीं होता। इसका कारण सिर्फ यही है कि हममें भीतर दृढ़ता का मलगा (Stuff) तो होता नहीं। सिर्फ खयाली महल उसके दिखलाने के लिये बनाना चाहते है। टीन के बर्तन का स्वभाव छोड़कर अपने जीवन के केन्द्र में निवास करो और सच्चाई की चट्टान पर दृढ़ता से खड़े हो जाओ। अपनी जिन्दगी किसी और के हवाले करो ताकि जिन्दगी के बचाने की कोशिशों में कुछ भी समय जाया न हो। इसलिये बाहर की सतह को छोड़कर जीवन की अन्दर की तहों में घुस जावो; तब नये रंग खुलेंगे। नफरत और द्वैतदृष्टि छोड़ो, रोना छूट जायगा। प्रेम और आनन्द से काम लो; शाँति की वर्षा होने लगेगी और दुखड़े दूर हो जायेंगे। जीवन के तत्व का अनुभव करके चुप हो जावो; धीरे और गम्भीर हो जावोगे। वीरों की, फकीरों की, पीरों की यह कूक हैं—हटो पीछे, अपने अन्दर जावो, अपने आपको देखो, दुनिया और की और हो जायगी। आपनी आत्मिक उन्नति करो।

प्रकाशन-काल पौष-संवत् १९६५ वि०
जनवरी-फरवरी सन् १९०९ ई०

कन्या-दान—

धन्य है वे नयन जो कभी-कभी प्रेम-नीर से भर आते हैं। प्रति दिन गंगा-जल में तो स्नान होता ही है परंतु जिस पुरुष ने नयनों की धारा मे कभी स्नान किया है वही जानता है कि इस नयनों की गंगा स्नान मे मन के मलिनभाव किस तरह बह जाते है, अंत.करण कैसे पुष्प की तरह खिल जाता है; हृदय-ग्रन्थि किस तरह खुल जाती है; कुटिलता और नीचता का पर्वत कैसे चूर चूर हो जाता है। सावन-भादो की वर्षा के बाद वृक्ष जैसे नवीन-नवीन कोपलें धारण किये हुए एक विचित्र मनोमोहनी छटा दिखाते हैं उसी तरह इस प्रेम-स्नान से मनुष्य की आन्तरिक अवस्था स्वच्छ, कोमल और रसभीनी हो जाती है। प्रेम-धारा के जल से सींचा हुआ हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। हृदयस्थली में पवित्र भावों के पौधे उगते; बढते और फलते है। वर्षा और नदी के जल से तो अन्न पैदा होता है; परन्तु नयनों की गंगा से प्रेम और वैराग्य के द्वारा मनुष्य-जीवन को आग और बर्फ से बपतिस्मा मिलता है अर्थात् नया जन्म होता है—मानो प्रकृति ने हर एक मनुष्य के लिए इस नयन-नीर के रूप में मसीहा भेजा है, जिससे हर एक नर-नारी कृतार्थ हो सकते है। यही वह यज्ञोपवीत है जिसके धारण करने से हर आदमी द्विज हो सकता है। क्या ही उत्तम किसी ने कहा :—

हाथ खाली मर्दुमे दीदा बुतो से क्या मिलें।
मोतियों की पंज-ए-मिजगाँ इक माला तो हो॥

आज हम उस अश्रु-धारा का स्मरण नहीं करते जो ब्रह्मानन्द के कारण योगी जनों के नयनों से बहती है। आज तो लेखक के लिये अपने जैसे साधारण पुरुषों की अश्रु-धारा का स्मरण करना ही इस लेख का मंगलाचरण है। प्रेम की बूँदों में यह असार संसार मिथ्या रूप होकर घुल जाता है और हम पृथ्वी से उठकर आत्मा के पवित्र नभो-मंडल में उड़ने लगते हैं। अनुभव करते हुए भी ऐसी खुली हुई अवस्था में हर कोई समाधिस्थ होता है; अपने आपको भूल जाता है: शरीराध्यास न जाने कहाँ चला जाता है; प्रेम की काली घटा ब्रह्म-रूप में लीन हो जाती है; चाहे जिस शिल्पकार, चाहे जिस कला-कुशल-जन, के जीवन को देखिए उसे इस परमावस्था का स्वयं अनुभव हुए बिना अपनी कला का तत्व ज्ञान नहीं होता। चित्रकार सुंदरता को अनुभव करता है और तत्काल ही मारे खुशी के नयनों में जल भर लाता है। बुद्धि प्राण, मन और तन सुंदरता में डूब जाते हैं। सारा शरीर प्रेम-वर्षा के प्रवाह में बहने लगता है। वह चित्र ही क्या जिसको देख देखकर चित्रकार की आँखें इस मदहोश करनेवाली ओस से तर न हुई हों। वह चित्रकारी ही क्या जिसने हजार बार चित्रकार को इस योग-निद्रा में न सुलाया हो।

कवि को देखिए, अपनी कविता के रस-पान से मत्त होकर वह अन्तःकरण के भी परे आध्यात्मिक नभो-मंडल के बादलों में विचरण करता है। ये बादल चाहे आत्मिक जीवन के केन्द्र हों, चाहे निर्विकल्प समाधि के मंदिर के बाहर के घेरे, इनमें जाकर कवि जरूर सोता है। उसका अस्थि-मांस का शरीर इन बादलों में घुल जाता है। कवि वहाँ ब्रह्म-रस का पान करता है और अचानक बैठे बिठाये श्रावण-भादों के मेघ की तरह संसार पर कविता की वर्षा करता है। हमारी आँखें कुछ ऐसी ही हैं। जिस प्रकार वे इस संसार के कर्त्ता को नहीं देख सकतीं उसी प्रकार आध्यात्मिक देश के बादल और धुन्ध में सोये

हुए कलाधर पुरुष को नहीं देख सकती। उसकी कविता जो हमको मदमत्त करती है वह एक स्थूल चीज है और यही कारण है कि जो कलानिपुण जन प्रतिदिन अधिक से अधिक उस अध्यात्मिक अवस्था का अनुभव करता है वह अपनी एक बार अलापी हुई कविता को उस धुन से नहीं गाता जिससे वह अपने ताजे से ताजे दोहों और चौपाइयों का गान करता है। उसकी कविता के शब्द केवल इस वर्षा के दाने है। यह तो ऐसे कवि के शान्तरस की बात हुई। इस तरह के कवि का वीररस इसी शान्तरस के बादलों की टक्कर से पैदा हुई बिजली की गरज और चमक है। कवि को कविता में देखना तो साधारण काम है; परन्तु आँखवाले उसे कहीं और ही देखते हैं। कवि की कविता और उसका आलाप उसके दिल और गले से नहीं निकलते। वे तो संसार के ब्रह्म-केन्द्र से आलापित होते हैं। केवल उस आलाप करनेवाली अवस्था का नाम कवि है। फिर चाहे वह अवस्था हरे हरे बाँस की पोरी से, चाहे नारद की वीणा से, और चाहे सरस्वती के सितार से वह निकले। वही सच्चा कवि है जो दिव्य सौंदर्य के अनुभव में लीन हो जाय और लीन होने पर जिसकी जिह्वा और कण्ठ नाग कुंडी के रुक जायें, रोमांच हो उठे, निजानन्द मे मत्त होकर कभी रोने लगे और कभी हँसने।

हर एक कला-निपुण पुरुष के चरणों में वह नयनों की गंगा सदा बहती है। क्या यह आनन्द हमको विधाता ने नहीं दिया! क्या उसी नीर में हमारे लिए राम ने अमृत नहीं भरा! अपना निश्चय तो यह है कि हर एक मनुष्य जन्म से ही किसी न किसी अद्‌भुत प्रेम-कला से युक्त होता है। किसी विशेष कला में निपुण न होते हुए भी राम ने हर एक हृदय में प्रेम-कला की कुञ्जी रख दी है। इस कुञ्जी के लगते ही प्रेम-कला की सम्पूर्ण सम्भूति अज्ञानियों और निरक्षरों को भी प्राप्त हो सकती है।

All arts are nothing but Samadhi applied to love.

We are all born geniuses only if we will. The painter the sculptor, the poet and the prophet have only been selected to love objects unseen by the ordinary human eye.[1]

कवि सदा बादलों से घिरा हुआ और तिमिराच्छन्न देश में रहता है। वहीं से चलते हुए बादलों के टुकड़े माता, पिता, भ्राता, भगिनी, सुत, दारा इत्यादि के चक्षुओं पर आकर छा जाते हैं। मैंने अपनी आँखों इनको छम छम बरसते देखा है। जिस आध्यात्मिक देश में कवि, चित्रकार, योगी, पीर, पैगंबर, औलिया विचरते हैं और किसी और को घुसने नहीं देते, वह सारे का सारा देश इन आम लोगों के प्रेमाश्रुओं से घुल घुल कर बह रहा है। आओ, मित्रों! स्वर्ग का आम नीलाम हो रहा है।

Paradise is at auction and any body can buy it.[2]

सर वाल्टर स्काट (Sir Walter Scott) अपनी "लेडी आफ दि लेक" (Lady of the Lake) नामक कविता में बड़ी खूबी से उन अश्रुओं की प्रशंसा करते हैं जो अश्रु पिता अपनी पुत्री को आलिंगन करके उसके केशों पर मोती की लड़ी की तरह बखेरता है। इन

१—कला स्वयं कुछ नहीं है, प्रेम में मन को समाहित करना ही कला है। हम प्रतिभा लेकर जन्म लेते हैं, हाँ, यदि हम उसका उपयोग करें। सामान्य आँखों से न दिखानेवाली वस्तु को प्यार कर सकने के कारण ही चित्रकार, मूर्तिकार, कवि और मसीहा विशिष्ट स्थान रखते हैं।

२—स्वर्ग नीलाम हो रहा है, कोई भी व्यक्ति इसे खरीद सकता है।

अश्रुओं को वे अद्भुत दिव्य प्रेम के अश्रु मानते है। सच है, संसार के गृहस्थ मात्र के संबंधों में पिता और पुत्री का सम्बन्ध दिव्यप्रेम से भरा है। पिता हृदय अपनी पुत्री के लिए कुछ ईश्वरीय हृदय से कम नहीं।

पाठक, अब तक न तो आपको और न मुझे ही ऊपर की लिखी हुई बातों का ऊपरी दृष्टि से कन्यादान के विषय से कुछ सम्बन्ध मालूम होता है। तो फिर लेखक ने सरस्वती के सम्पादक को नीली पेंसल फेरने का अधिकार क्यों न दिया। उसका कारण केवल यह है कि ऊपर और नीचे का लेख लेखक की एक विशेष देश-काल सम्बन्धी मनो-लहरी है। पता लगे, चाहे न लगे कन्यादान से सम्बन्ध अवश्यमेव है।

एक समय आता है जब पुत्री को अपने माता-पिता का घर छोड़कर अपने पति के घर जाना पड़ता है।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीयमामुतः। शु० यजु०

"आओ, आज हम सब मिलकर अपने पतिदेव त्रिकालदर्शी सुगंधित पुरुष का यज्ञ करें जिससे, जैसे दाना पकने पर अपने छिलके से अलग हो जाता है, वैसे ही हम इस घर के बंधनों से छूटकर अपने पति के अटलराज को प्राप्त हों।"

प्राचीन वैदिक काल में युवती कुवाँरी लड़कियाँ यज्ञाग्नि की परिक्रमा करती हुई ऊपर की प्रार्थना ईश्वर के सिंहासन तक पहुँचाया करती थीं।

हर एक देश में यह बिछोड़ा भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। परन्तु इस बिछोड़े में त्याग-अंश नजर आता है। योरप में आदि काल से ऐसा रवाज चला आया है कि एक युवा कन्या किसी वीर, शुद्ध हृदय और सोहने नौजवान को अपना दिल चुपके-चुपके पेड़ों की आड़में,

दा नदी के तट पर, या वन के किसी सुनसान स्थान में, दे देती है। अपने दिल को हार देती है मानो अपने हृत्कमल को अपने प्यारे पर चढ़ा देती है; अपने आपको त्याग कर वह अपने प्यारे में लीन हो जाती है। वाह! प्यारी कन्या तूने तो जीवन के खेल को हार कर जीत लिया। तेरी इस हार की सदा संसार में जीत ही रहेगी। उस नौजवान को तू प्रेम-मय कर देती है। एक अद्‌भुत प्रेम-योग से उसे अपना कर लेती है। उसके प्राण की रानी हो जाती है। देखो! वह नौजवान दिन-रात इस धुन में है कि किस तरह वह अपने आपको उत्तम से उत्तम और महान् से महान् बनाये—वह उस बेचारी निष्प्राण कन्या के शुद्ध और पवित्र हृदय को ग्रहण करने का अधिकारी हो जाय। प्रकृति ऐसा दान बिना पवित्रात्मा के किसी को नहीं दे सकती। नौजवान के दिल में कई प्रकार की उमङ्ग उठती हैं। उसकी नाड़ी-नाड़ी में नया रक्त, नया जोश और नया जोर आता है। लड़ाई में अपनी प्रियतमा का खयाल ही उसको वीर बना देता है।

उसी के ध्यान में यह पवित्र दिल निडर हो जाता है। मौत को जीतकर उसे अपनी प्रियतमा को पाना है।

The Paradise is under the shade cf swords.[3]

ऊँचे से ऊँचे आदर्श को अपने सामने रखकर यह राम का लाल तन-मन से दिन-रात उसके पाने का यत्न करता है। और जब उसे पा लेता है तब हाथ में विजय का फुरेरा लहराते हुए एक दिन अकस्मात् उस कन्या के सामने आकर खड़ा हो जाता है। कन्या के नयनों से गंगा बह निकलती है और उस लाल का दिल अपनी प्रियतमा की सूक्ष्म प्राणगति से लहराता है, काँपता है, और शरीर ज्ञानहीन हो जाता है। बेबस होकर वह उसके चरणों में अपने आपको

३—तलवार की छाया में स्वर्ग बसता है।

गिरा देता है। कन्या तो अपने दिल को दे ही चुकी थी; अब इस नौजवान ने आकर अपना दिल अर्पण किया। इस पवित्र प्रेम ने दोनों के जीवन को रेशमी डोरों से बाँध दिया—तन-मन का होश अब कहाँ है। मैं तू और तू मैं वाली मदहोशी हो गई। यह जोड़ा मानो ब्रह्म में लीन हो गया; इस प्रेम में कदूरत लेश मात्र नहीं होती। विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) ने ले-मिज़्राबल (Les Miserables) में मेरीयस (Marius) और कौसट (Cosett) के ऐसे मिलाप का बड़ा ही अच्छा वर्णन किया है। चाँदनी रात है। मंद-मंद पवन चल रही है। वृक्ष अजीब लीला में आसपास खड़े हैं। और यह कन्या और नौजवान कई दिन बाद मिले हैं। मेरीयस के लिए तो कुल संसार इस देवी का मन्दिर-रूप हो रहा था। अपने हृदय की ज्योति को प्रज्वलित करके उस देवी की वह आरती करने आया है। कौसट घास पर बैठी है। कुछ मीठी-मीठी प्रेम भरी बातचीत हो रही है। इतने में सरसराती हवा ने कौसट के सीने से चीर उठा दिया। जरा सी देर के लिये उस बर्फ़ की तरह सफेद और पवित्र छाती को नग्न कर दिया। मगर मेरीयस ने फ़ौरन अपना मुँह परे को हटा लिया। वह तो देवी-पूजा के लिये आया है; आँख ऊपर करके नहीं देख सकता।

रोमियो और जूलियट नामक शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक में जूलियट ने किस अंदाज से अपना दिल त्याग दिया और रोमियो के दिल की रानी हो गई।

वे किस्से-कहानियाँ जिनमें नौजवान शाहज़ादे अपना दिल पहले दे देते हैं अपवित्र मालूम होते हैं; और उनके लेखक प्रेम के स्वर्गीय नियम से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। कुछ शक नहीं, कहीं-कहीं पर वे इस नियम को दरसा देते हैं, परन्तु सामान्य लेखों में पुरुष का दिल ही तड़पता दिखलाते हैं। कन्या अपना दिल चुपके से दे देती। इस दिल के दे देने की खबर वायु, पुष्प, वृक्ष, तारागण इत्यादि को

होती है। लैली का दिल मजनूँ की जात में पहले घुल जाना चाहिए और इस अभेदता का परिणाम यह होना चाहिए कि मजनूँ उत्पन्न हो—इस-यज्ञ कुण्ड से एक महात्मा (मजनूँ) प्रकट होना चाहिए। सोहनी मेहींवाल ३ के किस्से में असली मेंहीवाल उस समय निकलता है। जब कि सोहनी अपने दिल को लाकर हाजिर करती है। राँझा हीर की तलाश में निकलता जरूर है; मगर सच्चा योगी वह तभी होता है जब उसके लिए हीर अपने दिल को बेले के किसी झाड़ मे छोड़ आती है। शकुन्तला जंगल की लता की तरह बेहोशी की अवस्था में ही जवान हो गई। दुष्यंत को देखकर अपने आपको खो बैठी। राजहंसों से पता पाकर दमयन्ती नल में लीन हो गई। राम के धनुष तोड़ने से पहले ही सीता अपने दिल को हार चुकी। सीता के दिल के बलिदान का ही यह असर था कि मर्यादा-पुरुषोत्तम राम भगवान् वन-वन बारह वर्ष तक अपनी प्रियतमा के क्लेश निवारणार्थ रोते फिरे।

Northing but a perfect womanhood can call men to Purity and srcrifice, to manhood and to godhood.[४]

३ पंजाब के प्रसिद्ध कवि फाजलशाह की रचित कविता में सोहनी मेहीवाल के प्रेम का वर्णन है। सोहनी एक कलाल की कन्या थी और मेंहीवाल फारस के एक बड़े सौदागर का पुत्र था जिसने सोहनी के प्रेम में अपना सर्वस्व लुटाकर अपनी प्रियतमा के पिता के यहाँ भैंस चराने पर नौकर हो गया।

यह भी पंजाब ही के प्रसिद्ध कवि वारेशाह की कविता की कथा है

४ केवल पूर्ण नारी ही मनुष्य को पवित्रता और त्याग का पाठ पढ़ा सकती है। वही उसे मनुष्यत्व और देवत्व का सन्देश दे सकती है।

यूरप मे कन्या जब अपना दिल ऊपर लिखे गये नियम से दान करती है तब वहाँ का गृहस्थ-जीवन आनन्द और सुख से भर जाता है। जहाँ खुशामद और झूठे प्रेम से कन्या फिसली, थोड़ी ही देर के बाद गृहस्थाश्रम में दुख-दर्द और रागद्वेप प्रकट हुए। प्रेम के कानून को तोड़कर जब यूरप में उलटी गंगा बहने लगी तब वहाँ विवाह एक प्रकार की ठेकेदारी हो गया और समाज में कहीं-कहीं यह खयाल पैदा हुआ कि विवाह करने मे कुँवारा रहना ही अच्छा है। लोग कहते है कि यूरोप में कन्या-दान नही होता; परन्तु विचार से देखा जाय तो संसार मे कभी कहीं भी गृहस्थ का जीवन कन्या-दान के बिना सुफल नहीं हो सकता। यूरप के गृहस्थों के दुखड़े तब तक कभी न जायँगे जब तक एक बार फिर प्रेम का कानून, जिसको शेक्सपियर ने अपने "रोमियो और जूलियट" में इस खूबी से दरसाया है, लोगो के अमल में न आवेगा। अतएव यूरप और अन्य पश्चिमी देशों मे कन्या-दान अवश्य-मेव होता है। वहाँ कन्या पहले अपने को दान कर देती है; पीछे से गिरजे में जाकर माता, पिता या और कोई सम्बन्धी फूलों से सजी हुई दूल्हन को दान करता है।

(The bride is given away in Europe.[५])

यूरोप में गृहस्थों की बेचैनी

आजकल पश्चिमी देशो में झूठी और जाहिरी शारीरिक आजादी के खयाल ने कन्या-दान की आध्यात्मिक बुनियाद को तोड़ दिया है। कन्या-दान की रीति जरूर प्रचलित है, परन्तु वास्तव में उस रीति में मानो प्राण ही नही। कोई अखबार खोलकर देखो, उन देशों में पति और पत्नी के झगड़े वकीलों द्वारा जजों के सामने तै होते है। और जज की मेज पर विवाह की सोने की अँगूठियाँ, काँच के छल्लो की तरह द्वेष के

---

५. यूरोप में वधू दे दी जाती है।

पत्थरों से टूटती हैं। गिरजे मे कल के बने हुए जोड़े आज टूटे और आज के बने जोड़े कल टूटे।

ऐसा मालूम होता है कि मौनोगेमी (स्त्री-व्रत) का नियम, जो उन लोगों की स्मृतियों और राज-नियमो मे पाया जाता है, उस समय बनाया गया था जब कन्या-दान आध्यात्मिक तरीके से वहाँ होता था और गृहस्थों का जीवन सुखमय था।

भला सच्चे कन्या-दान के यज्ञ के बाद कौन सा मनुष्य हृदय इतना नीच और पापी हो सकता है। जो हवन हुई कन्या के सिवा किसी अन्य स्त्री को बुरी दृष्टि से देखे। उस कुरबान हुई कन्या की खातिर कुल जगत् की स्त्री-जाति से उस पुरुष का पवित्र सम्बन्ध हो जाता है। स्त्री-जाति की रक्षा करना और उसे आदर देना उसके धर्म का अङ्ग हो जाता है। स्त्री-जाति मे से एक स्त्री ने इस पुरुष के प्रेम में अपने हृदय की इसलिये आहुति दी है कि उसके हृदय में स्त्री-जाति की पूजा करने के पवित्र भाव उत्पन्न हों; ताकि उसके लिए कुलीन स्त्रियाँ माता समान, भगिनी समान, पुत्री समान, देवी समान हो जायँ। एक ही ने ऐसा अद्भुत काम किया कि कुल जगत् की बहनों को इस पुरुष के दिल की डोरी दे दी। इसी कारण उन देशों मे मौनोगेमी (स्त्री-व्रत) का नियम चला। परन्तु आजकल उस कानून की पूरे तौरपर पाबन्दी नहीं होती। देखिए, स्वार्थ-परायणता के वश होकर थोड़े से तुच्छ भोगों की खातिर सदा के लिए कुँवारापन धारण करना क्या इस कानून को तोड़ना नही है। लोगों के दिल जरूर बिगड़ रहे हैं। ज्यों-ज्यों सौभाग्यमय गृहस्थ जीवन का सुख घटता जाता है त्यों-त्यों मुल्की और इखलाकी बेचैनी बढ़ती जाती है। ऐसा मालूम होता है कि यूरप की कन्याएँ भी दिल देने के भाव को बहुत कुछ भूल गई हैं। इसी से अलबेली भोली कुमारिकायें पारल्यामेंट के झगड़ों में पड़ना चाहती हैं; तलवार और बंदूक लटकाकर लड़ने मरने को तैयार

है। इससे अधिक यूरप के गृहस्थ-जीवन की अशान्ति का और क्या सबूत हो सकता है :—

On one side the suppragist movement is to my mind the open condemnation of the moral degneration of men who have forgotten that they have to take the inspiration of their life and its activities from the hearts of the mother, the sister, the wife and the daughter, and have to borrow all their nobleness form the divine womanhood and on the other side, it is the painful evidence of the extinction of the realisation of the ideal of Kanyadan—thence—blest of all arts by which she could rule over the hearts of men and she, the queen of the Home, was if so fact the Queen of the Empires of man, real dictator of laws and the presiding Deity of nations.[६]

६—स्त्रियों को मताधिकार दिलाने का यह आन्दोलन मेरे विचार से एक ओर उन मनुष्यों के नैतिक पतन की खुली भर्त्सना है जो यह भूल गये हैं कि उन्हें अपने जीवन तथा कार्यों में अपनी माँ, बहिन, पत्नी तथा बेटी से प्रेरणा ग्रहण करनी होगी, और नैसर्गिक नारीत्व से ही अपनी सारी उच्चता प्राप्त करनी होगी, दूसरी ओर यह कन्या-दान के उस आदर्श के लोप की अनुभूति का दुःखद उदाहरण है जो समस्त कलाओं में उच्चतम है—वह कला जिसके सहारे नारी मनुष्यों के हृदयों पर राज्य करती है और वह सत्यमेव घर की रानी, मानव साम्राज्य की सम्राज्ञी, सच्ची नियामिका और राष्ट्रों की सच्ची भाग्य-विधायिका बन सकती है।

आर्यावर्त में कन्या-दान प्राचीन काल से चला आता है। कन्या-दान और पतिव्रत-धर्म दोनों एक ही फल-प्राप्ति का प्रतिपादन करते हैं। आज-कल के कुछ मनुष्य कन्या-दान को गुलामी की हँसली मान बैठे हैं। वे कहते हैं कि क्या कन्या कोई गाय, भैंस या घोड़ी की तरह बेजान और बेजबान वस्तु है जो उसका दान किया जाता है। यह अल्पज्ञता का फल है—सीधे और सच्चे रास्ते से गुमराह होना है। ये लोग गम्भीर विचार नहीं करते। जीवन के आत्मिक नियमों की महिमा नहीं जानते। क्या प्रेम का नियम सबसे उत्तम और बलवान् नहीं है? क्या प्रेम में अपनी जान को हार देना सब के दिलों को जीत लेना नहीं है? क्या स्वतन्त्रता का अर्थ मन की बेलगाम दौड़ है, अथवा प्रेमाग्नि में उसका स्वाहा होना है? चाहे कुछ कहिए, सच्ची आजादी उसके भाग्य में नहीं, जो अपनी रक्षा खुशामद और सेवा से करता है। अपने आपको गँवाकर ही सच्ची स्वतन्त्रता नसीब होती है। गुरु नानक अपनी मीठी जबान में लिखते हैं :—"जा पुच्छो सुहागनी कीनो गल्लीं शौह पाइए। आप गँवाइए तां शौह पाइए और कैसी चतुराई"—अर्थात् यदि किसी सौभाग्यवती से पूछोगे कि किन तरीकों से अपना स्वतन्त्रता-रूपी पति प्राप्त होता है तो उससे पता लगेगा कि अपने आपको प्रेमाग्नि में स्वाहा करने से मिलता है और कोई चतुराई नहीं चलती।

सच्ची स्वतंत्रता

True freedom is the highest summit of altruism and altruism is the total extinction of self in the self of all.

ऐसी स्वतंत्रता प्राप्त करना हर एक आर्य्यकन्या का आदर्श है। सच्चे आर्य-पिता की पुत्री गुलामी, कमजोरी और कमीनेपन के लालचों

७—मेरे लिए स्वतन्त्रता परोपकार की भावना का चरम लक्ष्य है और परोपकार की भावना है समष्टिगत 'स्व' में व्यक्तिगत 'स्व' का लय होना।

से सदा मुक्त है। वह देवी तो यहाँ संसार-रूपी सिंह पर सवारी करती है। वह अपने प्रेम-सागर की लहरों में सदा लहराती है। कभी सूर्य की तरह तेजस्विनी और कभी चंद्रमा की तरह शान्तिप्रदायिनी होकर वह अपने पति की प्यारी है। वह उसके दिल की महारानी है। पति के तन, मन, धन और प्राण की मालिक है। सच्चे आर्य-गृहों में इस कन्या का राज है। हे राम! यह राज सदा अटल रहे!

इसमें कुछ संदेह नहीं कि कन्या-दान आत्मिक भाव से तो वही अर्थ रखता है जिस अर्थ से सावित्री, दमयन्ती और शकुन्तला ने अपने आपको दान किया था; और इन नमूनों में कन्यादान का आदर्श पूर्ण रीति से प्रत्यक्ष है। प्रश्न यह है कि यह आदर्श सब लोगों के लिए किस तरह कल्याणकारी हो?

लेखक का खयाल है कि आर्य-ऋषियों की बनाई हुई विवाह-पद्धति इस प्रश्न का एक सुन्दर उत्तर है। एक तरीका तो आन्तरिक अनुभव से इस आदर्श को प्राप्त करना है वह तो, जैसा ऊपर लिख आये हैं, किसी किसी के भाग्य में होता है। परन्तु पवित्रात्माओं के आदेश से हर एक मनुष्य के हृदय पर आध्यात्मिक असर होता है। यह असर हमारे ऋषियों ने बड़े ही उत्तम प्रकार से हर एक नर-नारी के हृदय पर उत्पन्न किया है। प्रेमभाव उत्पन्न करने ही के लिये उन्होंने यह विवाह-पद्धति निकाली है। इससे प्रिया और प्रियतम का चित्त स्वतः ही परस्पर के प्रेम में स्वाहा हो जाता है। विवाह काल में यथो-चित रीतियों से न सिर्फ हवन की अग्नि ही जलाई जाती है किन्तु प्रेम की अग्नि की ज्वाला भी प्रज्वलित की जाती है जिसमें पहली आहुति हृदय कमल के अर्पण के रूप में दी जाती है। सच्चा कुलपुरोहित तो वह है जो कन्या-दान के मंत्र पढ़ने से पहले ही यह अनुभव कर लेता है कि आध्या-

त्मिक तौर से पति और पत्नी ने अपने आपको परस्पर दान कर दिया।

भारतवर्ष में वैवाहिक आदर्श को इन जाति-पाँति के बखेड़ों ने अब तब [क] कुछ टूटी फूटी दशा में बचा रखा है। कभी कभी इन बूढ़े, हठी और छू छू करनेवाले लोगों को लेखक दिल से आशीर्वाद दिया करता है कि इतने कष्ट झेलकर भी इन लोगों ने कुछ न कुछ तो पुराने आदर्शों के नमूने बचा रखे हैं। पत्थरों की तरह ही सही, खँडहरों के टुकड़ों की तरह ही सही, पर ये अमूल्य चिह्न इन लोगों ने रुई में बाँध बाँधकर, अपनी कुबड़ी कमर पर उठा, कुलियों की तरह इतना फासला तै करके यहाँ तक पहुँचा तो दिया। जहाँ इनके काम मूढ़ता से भरे हुए ज्ञात होते हैं, वहाँ इनकी मूर्खता की अमोलता भी साथ ही साथ भासित हो जाती है। जहाँ ये कुछ कुटिलतापूर्ण दिखाई देते हैं वहाँ इनकी कुटिलता का प्राकृतिक गुण भी नजर आ जाता है। कई एक चीजें, जो भारतवर्ष के रस्मोरवाज के खँडहरों में पड़ी हुई हैं, अत्यन्त गंभीर विचार के साथ देखने योग्य हैं। इस अजायबघर में से नये नये जीते जागते आदर्श सही सलामत निकल सकते हैं। मुझे ये खँडरात खूब भाते हैं। जब कभी अवकाश मिलता है मैं वहीं जाकर सोता हूँ। इन पत्थरों पर खुदी हुई मूर्तियों के दर्शन की अभिलाषा मुझे वहाँ ले जाती है। मुझे उन परम पराक्रमी प्राचीन ऋषियों की आवाजें इन खँडरात में से सुनाई देती हैं। ये संदेशा पहुँचाने वाले दूर से आये हैं। प्रमुदित होकर कभी मैं इन पत्थरों को इधर टटोलता हूँ, कभी उधर रोलता हूँ। कभी हनुमान् की तरह इनको फोड़ फोड़ कर इनमें अपने राम ही को देखता हूँ। मुझे उन आवाजों के कारण सब कोई मीठे लगते हैं। मेरे तो यही शालग्राम हैं। मैं इनको स्नान कराता हूँ, इन पर फूल चढ़ाता हूँ और घण्टी

आर्य-आदर्श के भग्नावशिष्ट अंश



बजाकर भोग लगाता हूँ। इनसे आशीर्वाद लेकर अपना हल चलाने जाता हूँ। इन पत्थरों में कई एक गुप्त भेद भी हैं। कभी-कभी इनके प्राण हिलते प्रतीत होते हैं और कभी सुनसान समय में अपनी भाषा में ये बोल भी उठते हैं।

भारत में कन्या-दान की रीति

भाई की प्यारी, माता की राजदुलारी, पिता की गुणवती पुत्री, सखियों की अलबेली सखी के विवाह का समय समीप आया। विवाह के सुहाग के लिए बाजे बज रहे हैं। सगुन मनाए जा रहे हैं। शहर और पास-पड़ोस की कन्यायें मिलकर सुरीले और मीठे सुरों में रात के शब्दहीन समय को रमणीय बना रही हैं। सबके चेहरे फूल की तरह खिल रहे हैं। परन्तु ज्यों ज्यों विवाह के दिन नजदीक आते जाते हैं त्यों त्यों विवाह होनेवाली कन्या अपनी जान को हार रही है, स्वप्नों में डूब रही है। उसके मन की अवस्था अद्भुत है। न तो वह दुखी ही है और न रजोगुणी खुशी से ही भरी है। इस कन्या की अजीब अवस्था इस समय उसे अपने शरीर से उठाकर ले गई है और मालूम नहीं कहाँ छोड़ आई है। इतना जरूर निश्चित है कि उसके जीवन का केन्द्र बदल गया है। मन और बुद्धि से परे वह किसी देव-लोक में रहती है। विवाह-लग्न आ गई। स्त्रियाँ पास खड़ी गा रही हैं। अजीब सुहाना समय है। यथासमय पुरोहित कन्या के हाथ में कङ्कण बाँध देता है। इस वक्त कन्या का दर्शन करके दिल ऐसी चुटकियाँ भरता है कि हर मनुष्य प्रेम के अश्रुओं से अपनी आखें भर लेता है जान पड़ता है कि यह कन्या उस समय निःसंकल्प अवस्था को प्राप्त होकर अपने शरीर को अपने पिता और भाइयों के हाथ में आध्यात्मिक तौर से सौंप देती है। उसकी पवित्रता और उसके शरीर की वेदनावर्द्धक अनाथावस्था माता-पिता और भाई-बहन को चुपके प्रेमाश्रुओं से स्नान कराती है। कन्या न तो रोती है और न हँसती है, और न उसे अपने शरीर की सुध

ही है। इस कन्या की यह अनाथावस्था उस श्रेणी की है जिस श्रेणी को प्राप्त हुए छोटे-छोटे बालक नेपोलियन ऐसे दिग्विजयी नरनाथों के कंधो पर सवार होते है या ब्रह्म-लीन महात्मा बालकरूप होकर दिल की बस्ती में राज करते हैं। धन्य है, ऐ तू आर्यकन्ये! जिसने अपने क्षुद्र-जीवन को बिल्कुल ही कुछ न समझा। शरीर को तू ने ब्रह्मार्पण अथवा अपने पिता या भाई क अर्पण कर दिया। इसका शरीर-त्याग लेखक को ऐसा ही प्रतीत होता है जैसे कोई महात्मा वेदान्त की सप्तमी भूमिका में जा कर अपना देहाध्यास त्याग देता है। मै सच कहता हूँ कि इस कन्या की अवस्था संकल्प हीन होती है। चलती-फिरती भी वह कम है। उसके शरीर की गति ऐसी मालूम होती है कि वह अब गिरी, अब गिरी। हाँ, इसे सँभालनेवाले कोई और होते हैं। दो एक चन्द्रमुखी सहेलियाँ इसके शरीर की रखवाली करती है। सारे सम्बन्धी इसकी रक्षा में तत्पर रहते है। पतिव्रता आर्य-कन्या और पतिव्रता यूरप की कन्या में आजकल भी बहुत बड़ा फर्क है। विचारशील पुरुष कहते हैं कि आर्यकन्या के दिल में विवाह के शारीरिक सुखों का उन दिनो लेशमात्र भी ध्यान नहीं आता है। सुशीला आर्यकन्या दिव्य नभा-मडल में घूमती है। विवाह से एक दो दिन पहले हाथो और पाँवों मे मेहँदी लगाने का समय आता है। (पंजाब में मेहँदी लगाते है; कहीं-कहीं महावर लगाने का रिवाज है।) कन्या के कमरे मे दो एक छोटे-छोटे बिनौले के दीपक जल रहे हैं। एक जल का घड़ा रक्खा है। कुशासन पर अपनी सहेलियों सहित कन्या बैठी है। सम्बन्धी जन चमचमाते हुए थालो मे मेहँदी लिए आ रहे हैं। कुछ देर में प्यारे भाई की बारी आई कि वह अपनी भगिनी के हाथों में मेहंदी लगाये। जिस तरह समाधिस्थ योगी के हाथों पर कोई चाहे जो कुछ करे उसे खबर नही होती, उसी तरह इस भोली भाली कन्या के दो छोटे-छोटे हाथ इसके भाई के हाथो पर हैं; पर उसे कुछ खबर नहीं। वह नीर भरा वीर अपनी बहन के हाथो में मेहँदी

लगा रहा है। उन्हें इस तरह मेहँदी लगाते समय कन्या के उस अलौकिक त्याग को देख कर मेरी आँखों में जल भर आया और मैंने रो दिया। ऐ मेरी बहन ! जिस त्याग को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सैकड़ों पुरुषों ने जान हार दी और त्याग न कर सके; जिसकी तलाश में बड़े-बड़े बलवान् निकले और हार कर बैठ गये; क्या आज तूने उस अद्‌भुत त्यागादर्श रूपी वस्तु को सचमुच ही पा लिया; शरीर को छोड़ बैठी; और हमसे जुदा होकर देवलोक में रहने लग गई। आ, मैं तेरे हाथों पर मेहँदी का रंग देता हूँ। तूने अपने प्राणों की आहुति दे दी है; मैं उस आहुति से प्रज्वलित हवन की अग्नि के रंग का चिह्न-मात्र तेरे हाथों और पाँवों पर प्रकाशित करता हूँ। तेरे वैराग्य और त्याग के यज्ञ को इस मेहँदी के रंग में आज मैं संसार के सामने लाता हूँ। मैं देखूँगा कि इस तेरे मेहँदी के रंग के सामने कितना भी गहरा गेरू का रंग मान होता है या नहीं। तू तो अपने आपको छोड़ बैठी। यह मेहँदी का रंग अब हम लगाकर तेरे त्याग को प्रकट करते हैं। तेरे प्राण-हीन हाथ मेरे हाथों पर पड़े क्या कह रहे हैं। तू तो चली गई, पर तेरे हाथ कह रहे हैं कि मेरी बहन ने अपने आपको अपने प्यारे और लाड़ले वीर के हाथ में दे दिया। वीर रोता है। तेरे त्याग के माहात्म्य ने सबको रुला-रुलाकर घरवालों को एक नया जीवन दिया है। सारे घर में पवित्रता छा गई है। शान्ति; आनन्द और मंगल हो रहा है। एक कंगाल गृहस्थ का घर इस समय भरा पूरा मालूम होता है। भूखों को अन्न मिलता है। सम्बन्धी मेहमानों को भोजन देने का सामर्थ्य इस घर में भी तेरे त्याग के बल से आ गया है। सचमुच कामधेनु आकाश से उतरकर ऐसे घर में निवास करती है। पिता अपनी पुत्री को देखकर चुपके-चुपके रोता है। पुत्री के महात्याग का असर हर एक के दिल पर ऐसा छा जाता है कि आजकल भी हमारे टूटे-फूटे गृहस्थाश्रम के खंडरात में कन्या के विवाह के दिन दर्दनाक होते हैं। नयनों की गंगा धार में बहती है। माता-पिता और भाई को दैवी आदेश होता है कि अब

कन्यादान का दिन समीप है। अपने दिल को इस गंगाजल से शुद्ध कर लो। यज्ञ होनेवाला है। ऐसा न हो कि तुम्हारे मन के सङ्कल्प साधारण क्षुद्र जीवन के सङ्कल्पों से मिलकर मलिन हो जायँ। ऐसा ही होता है। पुत्री-वियोग का दुःख, विवाह का मङ्गलाचार और नयनों की गंगा का स्नान इनके मन को एकाग्र कर देता है। माता, पिता, भाई, बहन और सखियाँ भी पतिवरा कन्या के पीछे आत्मिक और ईश्वरी नभ में बिना डोर पतङ्गों की तरह उड़ने लगते है। आर्य-कन्या का विवाह हिन्दू-जीवन में एक अद्भुत आध्यात्मिक प्रभाव पैदा करनेवाला समय होता है, जिसे गहरी आँख से देखकर हमें सिर झुकाना चाहिए।

विवाह के बाहरी शोरोगुल में शामिल होना हमारा काम नहीं। इन पवित्रात्माओं की उच्च अवस्था का अनुभव करके उनको अपने आदर्श-पालन में सहायता देना है! धन्य हैं वे सम्बन्धी जो उन दिनों अपने शरीरों को ब्रह्मार्पण कर देते है। धन्य हैं वे मित्र जो रजोगुणी हँसी को त्यागकर उस काल की महत्ता का अनुभव करके अपने दिल को नहला धुलाकर, उस एक आर्यपुत्री की पवित्रता के चिंतन में खो देते है। सब मिल-जुलकर आओ, कन्या-दान का समय अब समीप है। केवल उसी सम्बन्धी और वही सखियाँ जो इस आर्यपुत्री में तन्मय हो रहा है। उस वेदी के अन्दर आ सकती हैं। जिन्होंने कन्यादान के आदर्श के माहात्म्य को जाना है वही यहाँ उपस्थित हो सकते हैं। ऐसे ही पवित्र भावों से भरे हुए महात्मा विवाह मण्डप में जमा है। अग्नि प्रज्वलित है। हवन की सामग्री से सत्त्वगुणी सुगंध निकल-निकल कर सबको शान्त और एकाग्र कर रही है। तारागण चमक रहे हैं। ध्रुव और सप्तर्षि पास ही आ खड़े हुए है। चन्द्रमा उपस्थित हुआ है। देवी और देवता इस देवलोक में विहार करनेवाली आर्य-पुत्री का विवाह देखने और उसे सौभाग्यशीला होने का आशीर्वाद देने आये है। समय पवित्र है। हृदय पवित्र है। वायु पवित्र है और देवी देवताओं की

उपस्थिति ने सबको एकाग्र कर दिया है। अब कन्यादान का वक्त है स्त्रियों ने कन्यादान के माहात्म्य के गीत अलापने शुरू किये है। सबके रोम खड़े हो रहे है। गले रुक रहे हैं। आँसू चल रहे है—

"बिछुड़ती दुलहन वतन से है जब खड़े हैं रोम और गला रुके हैं;
कि फिर न आने की है कोई ढब खड़े है रोम और गला रुके हैं;
यह दीनो-दुनिया तुम्हें मुबारक हमारा दूल्हा हमें सलामत;
पे याद रखना यह आखिरी छवि खड़े हैं रोम और गला रुके हैं।"

(स्वामी राम)

अब प्यारा वीर देव लोक में रमती देवी के समान अपनी समाधिस्थ बहन के शरीर को अपने हाथों में उठाये इस देवी के भाग्यवान् पति के साथ प्रज्वलित अग्नि के इर्द-गिर्द फेरे देता है। इस सोहने नौजवान का दिल भी अजीब भावो से भर गया है। शरीर उसका भी उसके मन से गिर रहा है। उसे एक पवित्रात्मा कन्या का दिल, जान, प्राण सबका सब अभी दान मिलना है। समय की अजीब पवित्रता, माता-पिता, भाई बहन और सखियों के दिलो की आशाये, सत्वगुणी संकल्पों का समूह, आये हुए देवी देवताओं के आशीर्वाद, अग्नि और मेहँदी के रंग की लाली, कन्या की निरवलम्बना, अनाथता, त्याग, वैराग्य और दिव्य अवस्था आदि ये सबके सब इस नौजवान के दिल पर ऐसा आध्यात्मिक असर करते है कि सदा के लिए अपने आपको वह इस देवी के चरणों मे अर्पण कर देता है। हमारे देश के इस पारस्परिक अर्पण का दिव्य समय (Divi. e time of mutual self-surrender = परस्पर आत्म समर्पण का दैवी काल) कुल दुनिया के ऐसे-समय से अधिक हृदयंगम होता है। कन्या की समाधि अभी नही खुली। परन्तु ऐसी योग-निद्रा में सोई हुई पत्नी के ऊपर यह आर्य नौजवान न्योछावर हो चुका। इसके लिए तो पहली बार ही प्रेम की बिजली इस तरह गिरी कि उसको खबर

तक भी न हुई कि उसका दिल उसके पहलू में प्रेमाग्नि से कब तड़पा कब उछला, कब कूदा और कब हवन हो गया। अब भाई अपनी बहन को अपने दिल से उसके पति के हवाले कर चुका। पिता और माता ने अपने नयनों से गंगा-जल लेकर अपने अंगों को धोया और अपनी मेहँदी रँगी पुत्री को उसके पति के हवाले कर दिया। ज्योंही उस कन्या का हाथ अपने पति के हाथ पर पड़ा त्योंही उस देवी की समाधि खुली। देवी और देवताओं ने भी पति और पत्नी के सिर पर हाथ रखकर अटल सुहाग का आशीर्वाद दिया। देवलोक में खुशी हुई। मातृलोक का यज्ञ पूरा हुआ चन्द्रमा और तारागण, ध्रुव और सप्तर्षि इसके गवाह हुए। मानो ब्रह्मा ने स्वयं आकर इस संयोग को जोड़ा। फिर क्यों न पति और पत्नी परस्पर प्रेम में लीन हों? कुल जगत् टूट फूटकर प्रलयलीन सा हो गया; इस पत्नी के लिए केवल पति ही रह गया। और, इसी तरह, कुल जगत् टूट-फूट प्रलय-लीन हो गया; इस पति के लिए केवल पत्नी ही रह गई। क्या रँगीला जोड़ा है जो कुल जगत् को प्रलय-गर्भ में लीन कर अनन्ताकाश में प्रेम की बाँसुरी बजाते हुए विचर रहा है। प्यारे! हमारे यहाँ तो यही राधा-कृष्ण घर घर विचरते हैं :—

"The reduction of the whole universe to a single being and the expansion of that single being even to God is love."

Victor Hugo[८]

सीता ने बारह वर्ष का बनवास कबूल किया; महलों में रहना न कबूल किया। दमयन्ती जंगल-जंगल नल के लिये रोती फिरी। सावित्री ने प्रेम

८—समस्त सृष्टि का एक मूल भूत में परिणत हो जाना तथा उस एक भूत का देवत्व में विकास पाना ही प्रेम है।—विक्टर ह्यूगो

के बल से यम को जीतकर अपने पति को वापस लिया। गांधारी ने सारी उम्र अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर बिता दी।

ब्रह्म-समाज के महात्मा भाई प्रतापचन्द्र मजूमदार अपने अमरीका के "लोवल लेक्चर" में कन्यादान के असर को, जो उनके दिल पर हुआ था, अमरीका-निवासियों के सम्मुख इस तरह प्रकट करते हैं ;—"यदि कुल संसार की स्त्रियाँ एक तरफ खड़ी हों और मेरी अपढ़ प्रियतमा पत्नी दूसरी तरफ खड़ी हो तो मैं अपनी पत्नी ही की तरफ दौड़ जाऊँगा।"

ऋषि लोग संदेशा भेजते है कि इस आदर्श का पूर्ण अनुभव से पालन करने में कुल जगत् का कल्याण होगा। हे भारतवासियो! इस यज्ञ के माहात्म्य का आध्यात्मिक पवित्रता से अनुभव करो। इस यज्ञ में देवी और देवताओं को निमंत्रित करने की शक्ति प्राप्त करो। विवाह को मखौल न जानो। यज्ञ का खेल न करो। झूठी खुदगर्जी की खातिर इस आदर्श को मटियामेट न करो। कुल जगत के कल्याण को सोचो।

प्रकाशन-काल—आश्विन संवत् १९६६ वि०
अक्टूबर सन् १९०९ ई०

पवित्रता

अनेक सूर्य आकाश के महामण्डल में घूम रहे हैं, अनन्त ज्योति इधर-उधर और हर जगह बिखर रहे हैं। सफेद सूर्य, पीले सूर्य, नीले सूर्य और लाल सूर्य, किसी के प्रेम में अपने अपने घरों में दीपमाला

ब्रह्मकान्ति

कर रहे हैं। समस्त संसार का रोम-रोम अग्नियों की अग्नि से प्रज्वलित हो रहा है। परमाणु श्री ब्रह्मकान्ति से मनोहर रूपों से सजे हुए, ज्योति से लदे हुए जगमग कर रहे हैं। परमाणु सूर्यरूप हो रहे हैं और सूर्य परमाणु रूप है। सुन्दरता, सारी लज्जा को त्याग, घर बार छोड़, अनन्त पर्दों को फाड़ खुले मुँह दर्शन दे रही है। बालकों; नारियों और पुरुषों के मुखों की लाली और सफेदी झड़ रही है। गुलाब, सेब और अंगूर के नरम-नरम और लाल लाल कपोलों में फूट फूट कर निकल रही है। प्रातःकाल के रूप में सिर पर नरम नरम और सफेद सफेद रुई का टोकरा उठाए हुए किस अन्दाज से वह आ रही है। सायंकाल होने अपने दुपट्टे के सुर्ख फूलों से फिर कुल संसार से होली खेलती हुई वह जा रही है। जल झरनों, चश्मों और नदी नालों में नाच रही है। हिमालय की बर्फों में लोट रही है। सजे धजे जंगल और रूखे सूखे बियाबानों की सनसनाहट में लोट रही है। युवति कन्या के रूप में जवानी की सुगन्ध फैलाती हुई वही चल रही है। नरगिस (एक फूल) की आँख में किस भेद से छिपी हुई है कि प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे है। बालक की बोलचाल में, चेहरे में, क्या झाँक झाँक कर सबको देख रही है। खुला दरबार है। ज्योति का आनन्द नृत्य, सब दिशाओं में हो रहा है। मीठी वायु दर्शनानन्द से चूर हो मारे खुशी के लोटती पोटती,

लड़खड़ाती, नाचती चली जा रही है। इस ब्रह्मकान्ति के जोश में बादल गरज रहे हैं। बिजली चमक रही है। अहाहा ! सारा संसार कृतार्थ हुआ। जाग उठा। हाथी चिंघाड़ रहे हैं। दौड़ रहे हैं। शेर गरज रहे हैं, कूद रहे हैं। मृग फलाँग रहे हैं। कोयल और पपीहे, बटेर, बैये (बया), कुमरी और चण्डूल नंगे ही नहा रहे हैं। दर्शन दीदार को पा रहे हैं। तीतर गा रहे हैं। मुर्गे अपनी छाती में आनन्द को पूरा भरकर कूक रहे हैं। ई, ई, ऊ, ऊ, कू, कू, हू, हू में वेद-ध्वनि, ओ३म् का आलाप हो रहा है। पर्वत भी मारे आनन्द के हवा में उछल उछल नीले आकाश को फाँद रहे हैं। बद्रीनाथ, केदारनाथ, जमनोत्तरी, गङ्गोत्तरी कञ्चनगंगा की चोटियाँ हँस रही हैं। वृक्ष उठ खड़े हुए हैं, इन सब की सन्ध्या हो चुकी है।

था जिनकी खातिर नाच किया जब सूरत उनकी आएगी।
कहीं आप गया कहीं नाच गया और तान कहीं लहराएगी॥

अर्थात् सबकी नमाज कज़ा हो गई। प्यारा नजर आया। सबकी ईद है। ब्रह्मर्षि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" पुकार उठा, चीख उठा, योगनिद्रा खुल गई। ब्रह्मकान्ति के आकर्षण ने दशवाँ द्वार फोड़कर प्राणों को अपनी ही गति फिर दे दी। मारे परमानन्द के हृदय बह गया, यहाँ गिर गया, वहाँ गिर गया। अत्यन्त ज्योति के चमत्कार से साधारण आँखें फूट गईं। प्रेम के तूफान ने सिर उड़ा दिया। हवनकुण्ड से स्याह, नीले रङ्ग का ब्रह्म, कमलों से जड़ा हुआ ब्रह्म, मोतियों से सजा हुआ किसी ने कन्धों पर रख दिया, ब्रह्मयज्ञ हो चुका। मनुष्यजन्म सुफल हुआ। जय ! जय !! जय !!! ॥ भक्त की जिह्वा बन्द हो गई। बाहु पसार जा मिला। कुछ न बोल सका। कुछ न बोला, ब्रह्मकान्ति में लीन हो गया। उसकी सितार की तारें टूट गईं। नारद की वीणा चुप हो गई। कृष्ण की बाँसुरी थम गई। ध्रुव का शंख गिर पड़ा। शिव का डमरू बन्द हो गया। महात्मा

पण्डित जी जा रहे हैं, छकड़ा पुस्तकों से लदा साथ जा रहा है। परन्तु पण्डितजी ये अमूल्य पुस्तकें छकड़े समेत अपने सिर पर उठाई हुई हैं। वह क्या हुआ क्या नजर आया ? अमूल्य पुस्तकें—वेद, दर्शन इत्यादि, पंडितजी के सिर से गिर पड़ी ? छकड़ा लड़खड़ाता गङ्गा में बह गया ? सब कुछ जल में प्रवाह कर दिया। पंडितजी का साधारण शरीर, वायु में मानों घुल गया। नाचने लग गए। चाँद के साथ, सूर्य के साथ हाथ पकड़े। नृत्य करते हुए वायु समान समुद्र की लहरों में ब्रह्मकान्ति के साथ जा मिले।

हल चलाता चलाता किसान रह गया। बकरी भैंस चराता २ वह और कोई भी उसी तरह लीन हुआ। जूते गाँठता २ एक और कोई दे मरा। भोग विलास की चीजें पास पड़ी हैं। ऊँचे महलों से निकल, सुनहरी पलङ्गों से गिर वह रेत में कौन लोट गया ! सिर से ताज उतार नंगे सिर नंगे पाँव यह अलख कौन जगाता फिरता है ? मोर मुकुट उतार यह सिर पर काँटे धरे सूली की नंगी धार पर वह मीठी नींद कौन सा राम लाडला सोता है ? तारों की तरह कभी मैं टूटा और कभी तू टूटा ! कभी इसकी बारी और कभी उसकी बारी आई। मीराँबाई ब्रह्मकान्ति का अमूल्य चिह्न हो गई। गार्गी ने ब्रह्मकान्ति की लाट को अपनी आँख में धारण किया। वेद ने ब्रह्मकान्ति के दर्शनरूप को अपनी आँख लिया।

हाय ! ब्रह्मकान्ति के अनन्त प्रकाश में भी मेरे लिए अँधेरा हुआ ?! अत्यन्त अत्याचार है—गङ्गाजल तो हो शीतल, परन्तु मेरा मन अपवित्रता के भावों से भरा हुआ मार्गशीर्ष और पौष की ठंडी रातों में भी अपने काले काले न[illegible] के नागों से डसा हुआ जल रहा हो, तड़प रहा हो ?? अ[illegible]ा का पर्दा जब आँख पर आ जावे तो भला किस तरह देखे क[illegible]ई ? [illegible]मालय की बर्फ हो शुद्ध सफेद और मेरा मन काला। हरी २

घास भी हो नरम और मेरा दिल हो कठोर ! पत्थर, रेत, कुशा, जल ये भी हों पवित्र, पर उन जैसी भी न हो मेरी स्थिति ? फूल भी हो सुगन्धित, मिट्टी भी सुगन्धित पर मेरे नेत्र और वाणी और अन्य अङ्ग हों दुर्गन्धित ? पत्थरों के पहाड़, घासों के जङ्गल, पानी के झरनों को देखकर तो महर्षि भी बोल उठे, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" पर मुझे देख उसको भी कभी २ शक हो जावे और प्रश्न उसके हृदय में भी उठे कि ब्रह्म को कैसे भूल गया ?

ऐसे कैसे निभेगी—हाय मुझमें यह अपवित्रता कहाँ से आ गई ! क्यों आ गई ! ब्रह्म को भी कलंकित कर रही है। ब्रह्मकान्ति की अटल शोभा को भी एक जरा से बादल ने ढाँप दिया। एक मोतियाबिंद के दाने ने गुप्त कर दिया। अपवित्रता को आँखों में रख कैसे हो सकता है यह विद्यादर्शन ? कैसे सफल हो मनुष्यजन्म राजदुलारे ! अहो क्या हुआ कि सारी की सारी सलतनत राज्य छूट गया, दर-दर गली-गली धक्के खाता हूँ; कोई लात मारता है, कोई ढेला, कभी यहाँ चोट लगती है, कभी वहाँ, कभी इस रोग ने मारा, कभी उस रोग ने मारा। सारा दिन और सारी रात रोग के पलँग पर भी पड़ा रहना क्या जीवन हुआ। मरने से पहले ही हजार बार मौत के डर से मरते रहना भी क्या जीवन है ? सदा आशा तृष्णा के जाल में फड़क २ न जीना और न मरना, भला जी क्या सुख हुआ ?

कौन सा कलियुग मेरे मन में भूत की तरह आ समाया है कि मुझे सब कुछ भुला दिया। खुश हो २ कर जुआ खेलने लग गया। अपनी आत्मा को भी हार बैठा। अपनी आँखें आप ही फोड़ अब रोते हो क्यों ? अब तो तुम्हारी प्रार्थना सुननेवाला कोई नहीं। इस अपवित्रता के अँधेरे को जैसे तैसे सफेद करना है। इस कलङ्क को धोना है। बस मोतियाबिन्द को निकलवाना है। मैं भारतनिवासी कैसे हो सक्ता [सकता] हूँ ? जिसने

अपने तीर्थों में भी, जिन तीर्थों की यात्रा से सुनते हैं अपवित्रता का कलङ्क दूर हो जाता था, काले सङ्कल्पों के नाग हर किसी को डसने के लिये छोड़ रखे हैं और इसे लीला मानकर रोते समान हँस रहा हूँ।

ये तिमिर के बादल कब उड़ेंगे ? पवित्रता का सूर्य मेरे अन्दर कब उदय होगा ! मेरे कान में धीमी सी आवाज आई कि भारत उदय हुआ। हाय भारत का कब उदय हुआ ! जब मेरे दिल में अभी अपवित्रता की रात है जब अभी मैंने हिमालय, गङ्गा, विन्ध्याचल, सतपुड़ा और गोवर्द्धन को अपनी आँख के अँधेरे से ढाँप रक्खा है। भारत तो सदा ही ब्रह्मकान्ति में वास करता है, भारत तो ब्रह्मकान्ति का एक चमकता दमकता सूर्य है। जब ब्रह्मकान्ति के दर्शन न हुए तो भारत का कहाँ पता चलता है। भारत की महिमा पवित्रता के आदर्श में है। ब्रह्मचारी पवित्र, गृहस्थ पवित्र, वानप्रस्थ पवित्र, संन्यासी पवित्र; ब्रह्मकान्ति को देखना और दिखाना भारत का जीवन है। पवित्रता का देश, भारतवासियों का देश है, जहाँ ब्रह्मकान्ति का भान होता है खुले दर्शन दीदार होते हैं। भला हड्डी, माँस और चाम के शरीरों और हजारों मील लम्बी चौड़ी मुर्दा की हुई (Sterilised laid) जमीन में भी कभी भारत बनता है ! मखौल के चचोलों से क्या लाभ होता है ! भारत तो केवल दिल की बस्ती है। ब्रह्मकान्ति का मानो केंद्र है ? भारत निवासियों का राज्य तो आध्यात्मिक जगत् पर है। अगर यह राज्य न हुआ तो (Sterilised past) मुर्दा भूमि के ऊपर राज्य किस काम का ? जल न जायँ वह महल जहाँ ब्रह्मकान्ति से रोशनी न हो। गोली न लग जाय उन दिलों को जहाँ प्रेम और पवित्रता के अटल दीपक नहीं जगमगाते। ऐसे बेरस बेसूद फलों के इन्तजार से क्या लाभ, जो देखने में तो अच्छे और जब जतन से बाग लगाए, फल पकाए तो खाने को वे काँटे बन गए। चलो चलें अपने सच्चे देश को, इस विदेश में

रहना, जूते खाने से क्या लाभ ? अपने घर को मुख मोड़ो ? बाहर क्या दौड़ रहे हो ?

पवित्रता का चिंतन करते हुए ये मेरे मन के कमरे की दीवारों पर जो चित्र लटक जाते हैं उनका वर्णन करना ही लेखक के लिये तो पवित्रता का स्वरूप जतलाता है। लेखक इस कमरे मे कई बार घण्टों इन चित्रों के चरणों में बैठा है—इन चित्रों की पूजा की और इनसे पवित्रता के स्वरूप को जितना हुआ अनुभव किया। चित्रों का जो लेखक ने अपने इस बुतखाने में रखे है, वर्णन तो इस लेख में हो नहीं सकता परन्तु जितना हो सक्ता [सकता] है उतना संक्षेप से अर्पण करता है :—

(पवित्रता का स्वरूप)

(१) ऊँचा पर्वत है, आस पास सुहाने देवदारु के जङ्गल नीचे तक खड़े हैं। मीलों लम्बी बर्फ पड़ी है, इसके चरणों में नदियाँ किलोल कर रही है। इसके सिर पर एक दो, एक एक मील लम्बे, पिघली बर्फ के कुण्ड भी हैं। ऊपर नीला आकाश झलक रहा है। पूर्णिमा का चाँद छिटक रहा है। ठंडक, शांति और सत्व [त्व] गुण बरस रहा है। सुख आसन में बैठे ताड़ी लगा खुली आँखों, मैं इस शोभा को देख रहा हूँ। आँखें खुली ही हुई जुड़ गई है। पलक फरकाने तक की फुर्सत नहीं, मुख खुला ही रह गया है। बन्द करने का अवकाश नहीं मिला। प्राणों को गति का पता नहीं। इस अपने ही चित्र के समय घड़ियों व्यतीत हो जाती हैं। पाठक ! बैठ जाओ, मेरी जगह अपने आपको बिठा लो और देखो जब तक आपका जी चाहे।

(२) गङ्गा का किनारा है, एक शिला पर भर्तृहरिजी बैठे हैं। पद्मासन लगाए हुए हैं। ब्रह्मचिन्तन में लीन हैं। उनकी मुँदी हुई आँखों से एक दो प्रेम के अश्रु निकलकर उनके तेज भरे कपोलों पर ढलककर जम गए

है। मृग जंगल से दौड़ते आए, और उनके शरीर को भी शिला जान अपने सींग खुजलाने लग गए। आकाश से एक प्यासी चिड़िया उड़ती आई है और इस लाल शिला पर गङ्गाजल की बूँदों को देख अपनी पीली चोंच से पी रही है। इतने में भर्तृहरिजी की समाधि खुली। भोलापन आनन्द आश्चर्य से भरी हुई—पता नहीं कहाँ को देख आई है। मुझे और आस पास की चीजों को तो कदापि नहीं देख रही थी उनके कण्ठ से स्वाभाविक ही शिव २ की ध्वनि हुई। मैं पास बैठा हूँ। उनके दर्शन करते २ मेरे रोम २ में शीतलता और सत्व [त्त्व] गुण की बहार हो गई; मानो गङ्गास्नान से मेरी दरिद्रता दूर हो गई। उनकी ध्वनि की प्रतिध्वनि बहती गङ्गा के अलाप से सुनाई दे रही है। अद्‌भुत समय है। देखो इस चित्र को, बैठ जाओ।

(३) एक हरे २ घास के लम्बे चौड़े मैदान के मध्य में दूध के रग [रंग] की एक नदी बह रही है। इसका जल साफ है। छोटे २ स्याह और काले, पीले और नीले, बड़े और छोटे शालग्राम गोता लगाए बैठे है। कई एक बालक नंगे होकर के ध्वनि प्रतिध्वनि करते २ किनारे से कूद कूदकर स्नान कर रहे हैं कोई तैर रहे है। उनके सफेद २ पीले २ शरीरों पर कुछ तो जल की रोशनी है और कुछ सूर्य की ज्योति की झलक है। इन शरीरों से सुगन्ध आ रही है। मुझसे न रहा गया। कपड़े उतार मैंने भी नंगे होकर कूदना शुरू कर दिया। पाठक ! अगर तेरा भी मन चाहे तो कपड़े उतार दे और इस ठंडे जल में कूद पड़े, उन बालकों की तरह स्नान कर। मै भी कभी २ बाहर आकर नरम रेत के बिस्तर पर लोटता था कुछ शरीर पर मलता था कुछ अपने केशों पर डालता था कभी धूप में बैठा, कभी गोता लगाया। बताओ तो अब अवस्था क्या है ?

(४) एक और चित्र लटक रहा है इसके देखते ही क्या पता क्या

हुआ ? काली रात हो गई। हाथ पसारे भी कुछ प्रतीत नही होता था परन्तु जरा सी देर के बाद तारो की मध्यम २ ज्योति चित्रकार के हाथ से झड़ी पड़ती है। ऊपर का आकाश, गहनो से लदी हुई दुलहन की तरह इस एकान्त में आन खड़ा है। इस चित्रकार की प्रशंसा करते २ मैं ठहर गया और कई घण्टे ठहरा रहा। इस चित्रकार के ब्रुश से एक और भी अद्भुत चित्र साथ हो साथ देखा। ब्रुश का कोई ऐसा इशारा हुआ कि इस दूसरे चित्र में काली अँधेरी रात भागती प्रतीत होने लगी और कोई ऐसा विद्याकला का गोला चला कि कुल तारागण अपनी २ पालकियों मे सवार हो बड़े जोर से भाग रहे है। मैं यह लीला देख ही रहा था कि अचानक रात थी ही नहीं और पर्वतों के पीछे से लाल २ सूर्य निकल आया था। प्रातःकाल हो गया, गजर बज गए, फूल खिले, हवा चली। पक्षी अपने सितारें ले मध्य आकाश में आशा अलापने लगे। पशु नीचे सिर किए हुए ओस से भरी हरी २ घास को खाने लग गए। नदियाँ मानो एकदम अपने घरों से बह निकलीं, मैं और मेरी पत्नी साथ २ जा रहे है। और कभी इस शोभा को और कभी एक दूसरे को देखते है। नाटक ! उठो अब तो भोर हो गई।

(५) कुछ एक सामग्री का ढेर लगा है। मनो ही पड़ी थी। अग्नि प्रज्वलित हुई। हवन कुण्ड में से लम्बी २ ज्वालाएँ निकलने लगी, हम दोनों देख रहे हैं। ऐसी पवित्रता का उपदेश हमने किसी गिरजे मन्दिर मे कभी नही सुना।

(६) अभी जरा मेरे नेत्र जो फिरे तो क्या देखता हूँ कि एक टूटे फूटे मिट्टी के किनारों वाला कुण्ड है उस पर सब्ज काह उग रही है। और कुछ एक प्रकार के पेड़ अपनी लम्बी २ डालियों से तालाब से बाज हिस्सो को छाता लगा रहे हैं। परन्तु सारे तालाब पर कमल फूल अपने चौड़े २ हरे २ पत्तो के सिंहासन पर सारी दुनियाँ के राज सिंहासनों को

मात करते हुए अपने सौरभ्य गौरव में प्रसन्न मन विराज रहे है। जो पवित्रता के स्वरूप को देखना है तो, पाठक ! क्यों नहीं प्रातःकाल इन कमलों को देखते ? पुस्तकों में और मेरे लेखों में क्या धरा है।

(७) वाह रे चित्रकार ! शाबास है तेरी अद्भुत कला को, जिसने इस चित्र में पता नहीं किस विराट् स्वरूप भगवान् को आनकर लटका दिया ! सारे का सारा विराट्स्वरूप जगत् दर्शाया है और यह भी किसी की आँख में, परन्तु किस कला से दर्शाया है, न तो आँख नजर आती है, और न आँखवाले के कहीं दर्शन होते हैं, केवल विराट् स्वरूप ही देख पड़ता है। मुझे कृष्णजी महाराज का खयाल आया, उनके मुख को देखा, पर उनका चित्र ऐसी कला संयुक्त नहीं। क्योंकि साथ ही साथ देखनेवाला भी नजर आ रहा है। इस अद्भुत चित्र के अन्दर ही अन्दर रे गुप्त प्रकार से लिखा है "पवित्रता" इस शब्द को ढूंढ़ना है। जब तक यह न ढूंढ़ लूं, इस चित्र को कैसे छोड़ सकता हूँ। यक्ष पास खड़ा है। चित्रकार ने अपने इस चित्र के दर्शन का यह मूल्य रखा है अगर आगे बढ़ता हूँ तो साँस घुटी जाती है। ऐसा न हो कि युधिष्ठिर राजाधिराज के भाइयों की तरह इस चित्र देखने का मूल्य मृत्यु ही हो ! मुझे अवश्य इस गुप्त शब्द को ढूंढ़ना है, न ढूंढ़ूँ तो मृत्यु हो जायगी, दुःख होगा। भला ऐसे चित्र को देखना और उसके दर्शन की शर्त को न बजा लाना ऐसा ही पाप है कि मृत्यु हो जाय !

ऊपर के आए हुए चित्र तो साधारण तौर पर कुछ कठिन भी हों। और यदि पवित्रता का स्वरूप न भी भान हो तो नीचे और चित्रों के दर्शन से मैंने कै एक को पवित्रता का अनुभव होते वास्तव मे देखा है।

(८) एक टूटा फूटा कच्ची ईंटों का मकान है। दीवारें इसकी मिट्टी से लिपी हुई हैं। इसकी छत घास के तिनकों से बनी है। किसी पक्षी का घोसला नहीं। यह अच्छा बड़ा है। दरवाजा इसका बहुत छोटा है। जरा

अपनी लम्बाई को कम करके जाना पड़ेगा। सर झुकाकर अन्दर घुसना पड़ेगा। इसके अन्दर क्या प्रभुज्योति से चमकती हुई एक देवी बैठी है। उसने मुझे नहीं देखा और न आपको। बैठ जाइए, इसकी गोद में एक छः महीने का, चाँद से मुखवाला बालक जिसके सफेद २ कपोलों पर काले बाल लिपट रहे है। यह बच्चा दूध पीते २ सो गया है। यह विद्या सुन्दरता से भूषित—सुन्दरी, इस अमूल्य बालक की माता है। अपने अत्यन्त प्रेम को दिल से बहा २ कर आंखों द्वारा इस सोते बालक पर सफेद ज्योति की किरणों के समान बारिश कर रही है। इस प्रेम नूर की झड़ी साफ बरसती प्रतीत होती है। यह नरो और क्राइस्ट है, इस नरो ने घर २ अवतार लिया है। घर २ यह अमूल्य ईसा इस तरह अपनी माँ की गोद में सोया है रफील (Raphael) जैसे वैद्य, और सर्वकलासंयुक्त चित्रकारों ने अपने सर्वस्व को इस चित्र की पवित्रता के चिन्तन में हवन कर दिया है। आयु इसकी प्रशंसा करते २ व्यतीत कर दी। माता की इस पवित्रता स्वरूप निगाह, ध्यान करते २ मातावत् पवित्र हृदय हो गई। माता के इस रूप में न जाने गुणों ने जीवन का वरतिस्मा लिया, इस चित्र के नीचे लिखा है 'पवित्रता का नमूना'' पाठक! मेरे लेख में आगे क्या धरा है! जरा अपना बिस्तर खोल दो, जल्दी पढ़ने की मत करो। इस झोपड़ी में दिन रात रहो तो सही? हो सके तो और कहाँ जाना है? इस देवी के चरणों में बैठ जाओ। इस पवित्र भाव की रज को अपने अन्दर के शरीर पर लगाओ। अपने मन को यही विभूति लगा लो। चित्रवत हो जाओगे? (Medomia Christ) मरियम और उसके बच्चों की तस्वीर को हजार बार देखा होगा। परन्तु अब बैठ जाओ। हर झोपड़ी के अन्दर देखो कौन बैठा है।

(६) यह माँ का लाड़ला बच्चा माँ का दूध पी, माँ का अत्यन्त प्रेम पान करके जवान हो गया। लटा इसके कन्धों पर लटक रही है।

इसके रूप पर अद्भुत तेज है। इसके नेत्र आकाश को उठे हुए हैं। पता नहीं किसको देख रहे हैं। इसका मस्तक चमक रहा है। पहचानो तो यह कौन सपूत है।

(१०) समुद्र चांदनी में है, किसी की प्यारी बहन अपने देश में समुद्र के किनारे खड़ी है, और प्यारा वीर किसी जहाज को लेकर अन्य देशों में गया हुआ है। परन्तु यह बहन हर रोज उसके जहाज को देखने की आशा में समुद्र के विशाल विस्तार को यों देखा करती है। जरा इसकी आँख को पूरे अनुभव से देखना। अभी २ उस एक आँसू को भी देखना जो आँखों से झड़कर समुद्र के जल में लीन हो जाता है। हो सके तो इसको अपनी बहन जानकर अब अपने हृदय को भी आजमाना। यह भी पिघलता है कि नहीं? वह जहाज आया। सीटी बजी। लंगर गिरा। भाई ने दूर से अपने रूमाल को लहरा २ कर हृदय से प्यारी बहन को नमस्कार की। बहन ने भी दूर से अपने [illegible] अपने सुन्दर हाथों से अपने वीर का स्वागत किया। न्योछावर हुई, इतने में भाई बहन दोनों एक दूसरे के गले लगाकर रो पड़े। इस चित्र के नीचे लिखा था "पवित्रता का बादल" झम झम झम झम, रम झम, रम झम।

(११) दूर देश से पिता सफर से कन्या के घर आया है। वह पुत्री दौड़ती बाहर आई है। साड़ी इस कन्या की सिर से उतर गई है, इस तेजी से दौड़ी है कि खुले केश पीछे २ रहे जाते हैं। मुख खुला है। बोल कुछ नहीं सकती। इतने में पिता उसे गले लगाकर ज्यों ही अपनी पुत्री के सिर पर प्यार देने झुका तो आँखों से मोतियों का हार झलककर उसके केशों पर बिखर गया। यह मोतियों का हार इस चित्र में क्या सुहावना लगता है।

(१२) सीताजी अयोध्याजी में अपने महल की सीढ़ियों पर खड़ी

हैं, और लक्ष्मणजी धनुष बाण कन्धे पर रक्खे, सर झुकाए हाथ जोड़े पास खड़े हैं, इनके चरणों की ओर देख रहे हैं, और श्री सीताजी के मनोरञ्जनदायक वाक्य और आज्ञा को सुन रहे हैं।

(१३) सघन वियाबान (निर्जन) है। लम्बे २ पेड़ खड़े हैं। कोई सूखे हैं कोई हरे। श्री सत्यवान्‌जी, कुल्हाड़ा कन्धे पर रक्खे आगे २ जा रहे हैं। देवी सावित्री पीछे आ रही हैं। एक जगह दोनों बैठ गए हैं। वे इनको देखती हैं, ये उनको देखते हैं। ये उनकी गोद में और वे इनकी गोद में लेट रहे हैं।

(१४) नदी पर एक एकान्त स्थान में बहुत सी कन्यायें, स्त्रियाँ, देवियाँ स्नान कर रही हैं। श्री शुकदेव जी पास से गुज़र रहे हैं। उनको कोई भय नहीं हुआ। ये जैसे की वैसे ही खुल्लमखुल्ला नंगी नहा रही हैं। नदी का जल मारे आनन्द के कूद रहा है। ये उछल रही है।

(१५) वह राजबालक ध्रुव, ताड़ी (समाधि) बाँधे जंगल में शेरों के मुख में अपने हाथ को दे रहा है, खेल कर रहा है। प्रतीत होता है लड़ रहा है।

(१६) छोटे २ बहुत से बच्चे बैठे हैं, पुस्तक हाथ में है और पढ़ रहे हैं, काँप २ हो रहे हैं।

(१७) एक नौजवान है फटी हुई बिना बटन की कमीज गले में है। सिर नंगा है। पाँव नंगा है। किसी की तलाश में है, चारों ओर देखता है कभी इस पेड़ के और कभी उस पेड़ के पास जा खड़ा होता है, रोता है। वृक्ष भी उसके साथ रो उठते हैं। प्रेम की मदहोशी में वह गिर पड़ा है आँसू चल रहे हैं। पृथ्वी की रज उसके बालों में विभूति की तरह लग गई है। कभी गिरता है, कभी उठता है। कभी बादल को देख उसे जाते २ खड़ा कर लेता है, शायद किसी को पत्र भेज रहा है। नदी से, पत्थरों से, पक्षियों से, पशुओं से बातें करता जा रहा है। अभी यहाँ था, अब नहीं है।

(१८) दमयन्ती राजहंसों के पास पड़ी है। नल का इन्तजार कर रही है। आप भी पास बैठ जाइए। आपकी माता है, बहन है, देवी है।

(१९) एक अनाथ अजनबी अभी अपने प्राणों को त्याग, एक दरख्त के नीचे सड़क किनारे वह नींद सो रहा है, जिससे कभी नहीं जागेगा अपना शरीर आपके हवाले कर गया। उसका मृत्यु संस्कार आपने करना है।

(२०) राजा जनक की सभा लगी है। ऋषि लोग बैठे है। ब्रह्मवादिनी गार्गी आँखों में कपिलवाली लाली लिए हुए आन खड़ी हुई है। सब आश्चर्यवत् हो गए। गार्गी नंगी है, पर बिजली के जोर से वह देवी कह उठी—जाओ अभी सब शूद्र हैं चमार हैं। वह जा रही है। आकाश प्रणाम करता है, पृथिवी काँप रही है।

(२१) सफेद ऊन के कोट पहने ये छोटी २ भेड़ें इस टप्पर में दर्शन दे रही हैं। कोई खड़ी, कोई बैठी और कोई फलाँग रही है।

(२२) क्या सुहावना अरबी घोड़ा खड़ा है. काठी लगाम से सजा हुआ है। सवार लड़ाई में शहीद हो गया है। यह घरवाले सम्बन्धियों को खबर करने अकेला ही चला आया है। दुलदुले बेयार सामने खड़ा है। कौन इस अनाथ घोड़े को देख नहीं रो उठेगा। पाठक! क्या हृदयगम्य उद्वेग को लिए कुल जगत् में एक ही अपनी मिसाल आप खड़ा है। मुख नीचा किए हुए किसी दर्द से पीड़ित हो रहा है।

(२३) मालवा देश की महारानी, भारतवर्ष की जान, मीराबाई राज छोड़कर रज पर बैठी है। उसके दिव्य नेत्र खुले हैं। साधारण जगत् कुछ भी नहीं देख रहा है। इतने में राजाजी ने मस्त हाथी दौड़ाया कि इस देवी को कुचल डाले। मैं पास बैठा हूँ। क्या देखता हूँ कि देवी के पास आन हाथी की मस्ती खुल गई। उनके चरणों में नमस्कार की और चल

दिया । जब कभी मेरा हृदय विक्षिप्त होता है, मैं यहाँ आनकर इस देवी के चरणों की रज को ले अपने मस्तक और नाभि, दिल और चक्षु और सिर में लगा पवित्र करता हूँ ।

(२४) राजों के राज्य, राजधानियों की राजधानियां नष्ट हो गईं वह तख्त जिस पर बैठने से तख्ते हो गए, मिट्टी में मिल एक परन्तु समय के प्रभाव को देखिए—अब भारतवर्ष की महारानी नूरजहाँ रावी नदी के किनारे लाहौर शहर के उस तरफ मामूली धरती की गुफा में लेटी है, कभी २ उठकर एक निगाह सारे देश पर करती है। नवज काली रोज जा जाकर उसके चरणों पर नमस्कार करती है। ग्रीष्म ऋतु, रंग विरंग के पत्ते इसके ऊपर बरसाती है। वसंत ऋतु जब कभी आती है उसके सिर पर फूलों की वर्षा करती है। इस भारत की महारानी के स्थान की यात्रा यहीं आन होती है। मुझे आप आशीर्वाद देते हैं। और अपनी मलका का दर्शन कर मैं अजीब भावों से भर अपने पाठक के मुख को देखता हूँ।

(२५) वह कौन बैठे हैं! कनक के कुश का सिंहासन है, उस पर पद्मासन लगाये निर्वाण समाधि में लीन, कपिलवस्तु का राजा राज-कुमार बैठा है। जगत् को जीत चुका है। राजों का राजा है। बुद्ध के पत्थर के गढ़े चित्र तो कोई देखे, वे भी अद्भुत हैं पर शाक्यमुनि बुद्ध आप सबसे अद्भुत है। दर्शन दुर्लभ तो नहीं, वह रुकते नहीं उनको तुम्हारी खबर भी नहीं। पर दीदार खुले होते हैं, जहाँ बुद्धों का चित्र है, वह मन पवित्र है, स्थान पवित्र है।

(२६) एक किसी गाँव की गली है, किसान लोग रहते हैं, वह कौन आया! जिसे देखते सब के सब नर नारी बालक घरों से बाहर निकल देखने आए। नीली २ विभूति रमाए एक हाथ में भिक्षापात्र, दूसरे हाथ से पार्वती को पकड़े साक्षात् शिव पार्वती आ रहे हैं। अब मंगल होगा

सब को वर मिलेंगे। वह लो—शिवजी ने नाद बजाया। सोने के बर्तन में दूध के भरे गाँवों की स्त्रियाँ भिक्षा देने आई हैं। ठहरते तो नहीं, जा रहे है। मङ्गल, आनन्द, सुख की वर्षा करते जा रहे हैं।

(२७) कलकत्ते के पास एक निरक्षर नंगा कालीभक्त है। काली भक्त क्या? ब्रह्मकान्ति का देखनेवाला फकीर है। इसके नेत्र और इसका सिर, मेरे तेरे नेत्रों और सिरों से भिन्न हैं। किसी और धातु के बने हुए है। मामूली साधु नहीं, जो छू-छू करते फिरते हैं। एक कोई स्त्री आई। आप चीखकर उठे। माता कहकर सिर उसके चरणों पर रख दिया। मेरी तंगी निगाहों में वह कंचनी ही थी। पर रामकृष्ण परमहंस की तो जगत् माता निकली। देखकर मेरी आँखें फूट गईं। और मैंने भी दौड़कर उसके चरणों में शीश रख दिया। तब उठाया, जब आज्ञा हुई। दरिद्रो! क्या तुम दे रहे हो? मेरे सामने परमहंस ने कुल विराट् इस माता के चरणों में लाकर रख दिया? नेत्र खोल दिए। अहिल्या की तरह अपना साधारण शरीर छोड़कर यह देवी आकाश में उड़ गई? कहोगे - "पूर्ण" तो मूर्तिपूजक हो गया? कुछ भी कहो—मेरे मन की कोठरी ऐसी मूर्तियों से भरी है! इस बुतपरस्ती से पवित्रता मिलने के भाग खुलते हैं पवित्रता को अनुभव कर ब्रह्मकान्ति का दर्शन होता है।

कंगाल तो मैं हूँ जरूर और मेरे में कोई चित्र खरीदने का बल नहीं। परन्तु मित्रो! आकाश से एक दिन अमूल्य चित्रों की बारिस हुई थी। मैंने अपने घर के नीचे ऊपर से, सहन से छत से इकट्ठा करके एकत्र कर लिया था। पहले तो रखने का ध्यान नहीं था परन्तु जब प्रेम से मन की दीवारों पर लगाने लगा तो क्या देखता हूँ कि मेरे मन में अनन्त स्थान है और आनन्द चित्र लटक रहे हैं। मित्रो! सारा विराट् लटकाकर मैंने देखा कि अभी मेरा कमरा खाली का खाली ही था।

आजकल के उपदेश किये आगे पवित्रता के साधनों पर एक साधारण दृष्टि

प्रिय पाठक! प्रथम मुझको यह प्रकट करना है, कि इस शीर्षक के नीचे आकर यदि कहीं इस देश के बड़े २ आदमी भी कट जाँय, यदि कई एक बेताज भारतवासियों के दिन के खिलौने हुए जाँय, यदि कई एक वाहियात विचार आजकल के कल्पित हिन्दू धर्म के विरुद्ध युद्ध का झंडा उठावें। यदि प्राचीन ऋषियों की आज्ञा का भी कहीं-कहीं पालन न हो, यदि नीलनाथ के मुर्दों और ऋषिकेश एवं हरिद्वार के जीते लोगों के दुःख के शरीरों का अन्त हो जाय। कुछ भी हो, उनसे कभी भी यह परिणाम न निकालना कि मेरा अभिप्राय स्वप्न में भी प्राचीन ऋषियों—ब्रह्मशान्ति में रहने वालों की आज्ञा का तिरस्कार करने का है। या उनके उपदेश किये हुए आदर्शों के तोड़ने का है या आक्षेप लगाना स्वीकृत है या कभी भी उनके सम्मुख होकर बिना सिर झुकाए गुजरता है या किसी प्रकार से अपने देश निवासियों के हृदय को दुखाना है या क्लेश देना है कुछ मेरा अभिप्राय है, परन्तु किसी दशा में भी यह नहीं, मेरा प्रयोजन किसी से भी नहीं।

"दुनियाँ की छत पर खुश खड़ा हूँ तमाशा देखता।
चाहे न चाहे देता हूँ वहशियों की सी सदा॥

मेरी तो एक 'वहशियों की सी सदा' है। सुनो या न सुनो इससे कुछ प्रयोजन नहीं, ईश्वर की इस दुनिया में आप जहाँ रहते हैं, मैं यहाँ रहता हूँ। इसलिए छाता ओढ़कर अब मैं अपनी दृष्टि, अपने ऐसे ही मारे हुए दल की ओर फेंककर जो देखता हूँ वह बेधड़क कहे देता हूँ।

देश में, पता नहीं, न जाने कहाँ से किधर से कैसे और क्यों अपवित्रता

आ गई है, कि हमारे हाथ ऋषियों का इतना बड़ा आदर्श—त्याग और वैराग्य का आदर्श—मटियामेल हो गया? महात्मा बुद्ध

त्याग, वैराग्य और इनके अनर्थ

ने त्याग किया, ईसा ने त्याग किया, शङ्कर ने त्याग किया; रामकृष्ण परमहंस ने त्याग किया, स्वा० दयानन्द ने त्याग किया, स्वा० राम ने त्याग किया, भर्तृहरि ने त्याग किया, गोपीचन्द ने त्याग किया, पूर्ण भक्त ने त्याग किया, वैराग्य का बाना लिया, बस अब किसान भी हल जोतने को त्याग उनका सा रूप सँवार चले गंगातट को, चले ऋषिकेश को, वहाँ अन्न मुफ्त मिलता है। छोटे २ बालक और नवयुवक भी कूदे। अहह! आदर्श के दर्शन हुए, कमीज और पाजामा उतार दिया जोश आया, वैराग्य आया, गेरू रंग के वस्त्र धारण किए हुए फिर रहे है और दिन कटता ही नहीं रात गुजरती ही नहीं। जंगल खाता है, एकान्त भाता ही नहीं सभाएँ हों, पुलपिट हों, कालिज हों, स्कूल हों, आप अपने आपको दान देने को तय्यार हैं, बलिदान हो चुका, यज्ञ हो गया स्त्री का मुख देखना पाप है। बड़े २ वैराग्य के ग्रन्थ खोल, गेरू रंगे हम अपनी माता बहिन और कन्याओं को नग्न कर २ के उनके हड्डी मांस की नस-नस को गिन २ कर तिरस्कार करते हैं। क्यों भाई! बिना इसके भला वैराग्य और ब्रह्मचर्य का पालन कब होता है? वैराग्य और त्याग के उपदेश हो रहे हैं कि बस आत्मिक पवित्रता इसी से आएगी। जगत् बस अभी जीता कि जीता, क़िला सर हो गया, आपका बोलबाला हो, गया।

नहीं प्यारे! जरा थम जाओ जरा अपने शरीर को देखो जरा बुद्ध के शरीर को देखो जरा शङ्कर भगवान् के रूप को देखो जरा बड़े २ महात्माओं के शरीर को देखो, यदि ये शरीर पवित्र हैं तब उनकी माता का शरीर किस लिये अपवित्र मान लिया! यदि इन सबको पीताम्बर पहनाए पूजते हो तब वैराग्य और त्याग में मस्त लोगो!

भला इनकी मातात्रों को इनकी बहनों को इनकी कन्याओं को क्यों नग्न कर रहे हो ?

द्रौपदी की साड़ियां उतार २ अपनी पवित्रता के साधन कर रहे हो ? फूंक क्यों नहीं डालते इन ग्रन्थों या हिस्सों को जहां तुमको ऐसा वहशी बनाकर पवित्र बनाने के झूठे वचन मिले हैं। किससे छिपाये हो ज्यों २ द्रौपदी को नग्न करने में लगे हो त्यों २ तुम्हारा वैराग्य और त्याग गंगा में बह रहा है। गेरुवे कपड़े के नीचे वैसे के वैसे न सजे हुए पत्थर की तरह तुम निकले। ऐसा तिरस्कार करना और अपवित्र होना यह तो मन की चञ्चलता और ध्यान के अद्भुत नियमों को हड़ताल लगाना है। कदाचित्-असम्भव सम्भव हो जाय परन्तु ऐसे वैराग्य और त्याग से जिस्में [जिसमें] अपनी माताओं बहिनों कन्याओं के नग्न शरीरों को नीलाम करके पवित्रता खरीदनी है तब कदाचित् पवित्रता, न मन में, न दिल में, न आत्मा में, न देश में कभी आयगी ! मेरा विचार है कि कारण चाहे कुछ हो हमारे देश में इस झूठे त्याग और वैराग्य के उपदेश ने पवित्रता अकपटता सचाई का नाश कर दिया है, जिस उपदेश से मेरी माता का मेरी बहन का, मेरी स्त्री का, कन्या का तिरस्कार हो और तैसे ही तुम्हारी का भला वह कब मेरे तेरे हम सब के लिये देश भर के लिये कभी कल्याणकारी हो सक्ता [सकता] है ? सूर्य चाहे अंध होकर काला हो जाय, परन्तु जहां ऐसा तिरस्कार स्त्री जाति का होता है वहां अपवित्रता दरिद्रता दुःख कंगाल झूठ कपट राज्य न करें, चाण्डाल गद्दी पर न बैठे यह कदापि नहीं हो सक्ता [सकता]। ए बुद्ध भगवान ! क्यों न आपने अपने बाद आने वाले बुद्ध के नाम को ले लेकर संसार को अपवित्र बनाने वालों का विचार किया ? क्यों न आपने डंके की चोट से इस अनर्थनिवारणार्थ अपने बाद इस पुरुष की माता, पुत्री, बहिन को, स्त्री को, इस नीचे पुरुष के लिए अपने सामने उच्च सिंहासन पर बिठा इसको आज्ञा दी कि बचपन से लेकर जब तब

इनको ब्रह्मकान्ति का महा आकर्षण, स्वाभाविक, बुद्ध न बना दे तब तक यह अपना क, ख, ग, घ, और अ, आ, इ, ई, इन देवों के सिंहासन के पास बैठकर पढ़े, जो कुछ हो गया या बुद्ध पैदा ही हुआ उन्हें आपके भिक्षुक होने का उपदेश देने की क्या आवश्यकता थी ? आपको किसने उपदेश दिया था कि आप कपिलवस्तु राजधानी का ताज मार युवावस्था ही में ब्रह्मकान्ति की तलाश में—उस अनजानी ज्योति के स्वरूप की तलाश में जङ्गल में घूम अपने शरीर को सुखा लिया, हड्डियाँ कर दिया, ए भगवन् ! आकर अब जरा देखिये, तो सही, आपके बाद आज तक बुद्ध कोई न हुआ। किसी माता को आपकी माता के समान भी ब्रह्मकान्ति का दर्शन लाभ न हुआ और कोई न कर सकी। आपका नाम ही नाम रह गया है जिसके सहारे कई ईंट पत्थर रोड़े के मन्दिर खड़े हो गए। बुत बन गए परन्तु मनुष्य डूब गया। इसके नीचे आ मर गया, मनुष्यता अपवित्रता की कीचड़ में फँसकर मर ही गई। जिसके बचाने के लिए आप आये थे वह न बचा।

ए शङ्कर भगवन् !—आपसे विनयपूर्वक आज्ञा माँगकर आपकी सेवा में उपस्थित होता हूँ—आपको तो हिमालय भाता था, आपको तो वेद श्रुति दर्शनग्रन्थ, ब्रह्मकान्ति के दर्शन, कोई और काम न करने देते थे, आपको कोई और हल न चलाना था। आपके दर्शनों ही से सूर्य और चन्द्र उसी नीली खेती में ज्योति स्वयमेव बोते थे। परन्तु मैं तो एक अपने अपवित्र देशनिवासियों के विरुद्ध अपील लेकर आया हूँ, आपके जाने के बाद स[ं]न्यासाश्रम का नाश हो गया। सच कहता हूँ, मेरे देश का सन्यास अपवित्र हो गया, क्षुद्र हो गया, आपने जो इन लोगों की खातिर अपने एकान्त के सुख को जो, आचार्य गौड़पाद ने भी न छोड़ा, त्यागकर इनके कल्याण के लिए दिग्विजय किया। काश्मीर से रामेश्वर तक आपने ब्रह्मकान्ति का गायन किया। परन्तु आपके जाने के बाद इस देश में

गंगोत्तरी, हृषिकेश, केदारनाथ, बद्रीनारायण को भी अपवित्र कर दिया। गेरु रङ्ग को न तो पवित्र-धरा पर ही रहने दिया और न आपके शरीर पर। अब तो गेरुआ रंग मखमल के तकियों पर चमड़े की गद्दियों पर जागीरों और मठों के एकत्र किए हुए खजानों पर रखा है। दारिद्र, कमजोरी, कमीनापन कपट का पर्दा हो रहा है।

भगवन्! तीसरा नेत्र खोलकर जरा इस देश के गेरु रंगे उपदेशकों के अन्दर के अंधकार को क्यों नहीं देखते? सारा देश तो आपके पीछे इनको आपका रूप जानने लगा है। परन्तु ज्यूं २ समय गुजरता जाता है त्यूं २ मृत्यु और दुःख भूख और नंगा इस देश में बढ़ रहा है। क्या ब्रह्मज्ञान का फल यही है? महाराज? सरस्वती देवी से तो आप ६ महीने हारे रहे; क्यों न आपने हार मान ली और इस देवी को अपने सिंहासन पर बिठाया और क्यों न आप इस देश में इस देवी का राज्य अटल कर गए। आप मेरे देशनिवासियों की माता है। फिर स्त्री और कन्या को राजतिलक यदि अपने हाथों दे जाते तब क्या शङ्कर का इस देश में जन्म लेना कभी भी ऐसा असम्भव होता है जैसा अब हुआ है। मैं आपका बागी पुत्र आपसे प्रेम की लड़ाई करने आया हूँ, आपको यह राज्य अब देना ही पड़ेगा आपके चरण इस पृथ्वी को स्पर्श कर चुके है, इस देश की रज को आपका स्वरूप मानकर मैं तो अब लो—यह राज्य दिए देता हूँ।

जब तक आर्यकन्या इस देश के घरों और दिलों पर राज्य नहीं करती तब तक इस देश में पवित्रता नहीं आती। जब तक देश में पवित्रता नहीं आती, तबतक बल नहीं आता। ब्रह्मचर्य का प्राचीन आदर्श सुख नहीं दिखलाता, देश में पवित्रता लाने का ए भगवन्! अब तो पहिला संस्कार भारत कन्या को राज्यतिलक देना है।

सच है देश से नरपवित्रता, समष्टिरूप से है एक दो को यदि पवित्रता

किन्हीं और साधनों से आ भी गई तो वह साधन क्या हुए जिन्होंने मेरी और तेरी आँख ठीक न की।

ब्रह्मचर्य्य का उपदेश इस देश में प्राचीन काल से चला आया और आजकल कोई ही समाज हो, मन्दिर हो, सभा हो, सत्सङ्ग हो जहाँ इस देश में ब्रह्मचर्य्य पालन के ऊपर उत्तम से उत्तम व्याख्यान और उपदेश न होते हों, परन्तु अपने दैनिक जीवन को देखो। कल यदि सात फीट लम्बे आदमी थे तब आज ६ फ़ीट रह गए। कल के कालिजों में तो ५ फीट के बालक पढ़ते थे आज ४ फीट के ही रह गये। क्या उलटा परिणाम है। न हृदय में बल, न बुद्धि में शक्ति, न मन में साहस, न उच्च विचार न पवित्र जीवन, न दया, न धर्म, न धन न माल और इस देश में जहाँ ब्रह्मर्षियों ने संसार के आदि से गया था :—

ब्रह्मचर्य्य का उलटा उपदेश

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्य्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। महोऽसि सहो मयि धेहि॥ ६॥ य० १६। ६॥

और अफ्रीका के वहशी जिनको ब्रह्मचर्य्य का आदर्श कभी स्वप्न में भी नहीं आया, वे हमसे-लम्बे, हमसे चौड़े और हमसे अधिक पराक्रमी हैं।

इंगलैंड (England) में जहाँ इस पर कभी भी इतना ज़ोर न दिया गया, वहाँ के आजकल के लड़के भी हम से अधिक लम्बे, चौड़े, बलवान्, तेजवान् ज्ञानवान विद्वान्, सम्पत्तिमान् बुद्धिमान् है। हमारी कन्याएँ दुर्बल, पीले रंग की, जवानी में भी बुड्ढी की समान, और उस देश की मातायें और कन्याएं ६-६ फुट ऊँची सुर्खी और बल और तेज की हँसी लिए अकेली सारे जगत् को प्रातःकाल चलकर धूमधाम शाम को घर पहुँच जाय।

जापान को देखो, वहां किसी बालक को कभी भी ब्रह्मचर्य का आदर्श इ
जोर से इस अगड़ रगड़ से नलों से नहीं पिलाया जाता—जैसे यहां, परन्
सबके सब फूलों के समान खिले चेहरेवाले हैं, बलवाले है, विद्यावाले ,
महान् अनुभवोंवाले हैं उच्च उद्देश्यवाले है। हर कोई कहता है—

उठकर खड़ा हुआ हूं खाली जहान में।
और तसल्ली दिल भरी है दममें जानमें।

कौन सी प्रलय आ गई कि हमारे देश से ब्रह्मचर्य का आदर्श असली तौर पर बिलकुल नष्ट भ्रष्ट हो गया। नजर ही नहीं आता; मुझको देखो तुझको देखो, इसको देखो उसको देखो। सब जले भुने सड़े सड़ाए चेहरे लिए हुए आर्यऋषियों का नाम ले रहे हैं।

बस महाराज! ब्रह्मचर्य्य के इस विचित्र उपदेश को बन्द करो जिसमें तुमने स्त्रीजाति का तिरस्कार किया हैं। असली तौर से वैराग्य के बने उपदेश से स्त्रीजाति का तिरस्कार किया है। ब्रह्मचर्य अब इस अपवित्र देश में बिना माता भक्ति के, कन्यापूजा के कभी भी स्थापित नहीं हो सक्ता [सकता]। इस देश में क्या, कहीं भी ऐसा नहीं हो सक्ता [सकता]। ईसा को ऐसा ही उपदेश करते २ हार हुई। बुद्ध को हार हुई, शङ्कर का दिग्विजय हार में बदल गया? संन्यासी साधुओं के इस हार ने छक्के छुड़ा दिए। सारी फ़ौज इन स्त्रीजाति के अहित, ब्रह्मचर्य्य पालन करानेवाले जरनेलों को तित्तर बित्तर हो गई, पता ही नहीं लगता कहां गई?

जब यह हार गए तब इनके स्वरूप पर घड़े [गढ़े] हुए आश्रम और समाज स्कूल और कालिज कब जीत सक्ते [सकते] हैं? इन मांक Monk रुण्ड मुण्ड संन्यासी रूप विद्यालयों को क्यों बना रहे हो? जो बुद्ध और शङ्कर का ईसा और चैतन्य का दर्शन न कर सका वह भला मातृ रहित,

भक्तिरहित, कन्यारहित B. A. M. A.—साधारण अध्यापकों की मिट्टी और ईंट के रूखे सूखे घर कब करा सक्ते [सकते] हैं ?

The idea of monastic celibacy has never brought and shall never bring purity into social life. It will fermet & bring impurity Institutions educational or religious founded on such monastic ideas shall similarly never bring purity into home-life They shall always encourage insincerity hypocrisy and vaunt. They shall always turn out but a counterfeit life. The present day Indian imitation of the real & natural monks—The Buddha, the Christ, Newton, Kant, Walt Whitman & Spencer do nothing in their Ashrams but toll the death-Knell of social purity. Running away into the caves of Himalayas from the sacred person of woman is disgraceful to the land of Buddh & Ram Krishna Pramahan-a Social purity shall prosper not through avoiding the company of woman, but through reverent worship of her as Goddess in all cases where we take her as mother, as sister, as wife, daughter nay even as prostitute.[१]

---

१. आश्रमबद्ध ब्रह्मचर्य के विचार ने सामाजिक जीवन के न तो कभी पवित्रता उपस्थित की है और न कभी उपस्थित कर सकता है, यह उत्क्रामित होगा और अपवित्रता उत्पन्न करेगा। ऐसे आश्रमबद्ध

दान लेना नहीं है। दान देना भी एक पवित्रता का साधन माना जाता है परन्तु वह प्राचीन दान देने का भाव [illegible] कपूर की तरह इस देश से उड़ गया है। दान देने से जो [illegible] जिनसे

दान [illegible] धन आजकल कमाया जाता है, उनको छिपाने की जरूरत है, पवित्रता के चिन्तन और [illegible] से क्या प्रयोजन है? जिस तरह [illegible] के [illegible] एकत्रित होता है उसी तरह ईश्वर को [illegible] देखा [illegible] ही नहीं है। [illegible] इकट्ठा करके [illegible] दे देना, धर्मशाला बनवा देना, दीप लगवा देने, ईश्वर की आँखों में नमक डालकर अपने आपको चतुर कहना, [illegible] के [illegible] जीवन के विरुद्ध है दान के अर्थ वहाँ मिलते हैं। बस! एकदम बन्द कर दो दान देने का और रुपया जमा कर सके [सकते] हो तो करो, किसान की तरह अपना पसीना जमीन के अन्दर निचोड़ जो कुछ दाने मिलते हैं उनको

विचारों पर आधारित संस्था या धार्मिक संस्थायें भी इसी प्रकार गार्हस्थ्य जीवन में [illegible] पवित्रता न प्रस्तुत करेंगी। वे सर्वदा कलह, मारपीट और बम्ब को कोलाहल देंगी, सदैव एक धोखे का जीवन उपस्थित करेंगी। आज वास्तविक और सच्चे सन्तों—बुद्ध, ईसा, न्यूटन, कांट, वाल्ट ह्विटमैन और थोरो के भारतीय अनुयायी अपने आश्रमों में कुछ नहीं करते, बल्कि सामाजिक पवित्रता को कुत्सित किया करते हैं। नारी के पवित्र व्यक्ति से दूर हिमालय की गुफाओं में भाग जाना बुद्ध तथा रामकृष्ण परमहंस के देश के लिए लज्जाजनक है। सामाजिक पवित्रता नारी के सामीप्य का परित्याग करने से अभिवृद्ध नहीं हो सकती, बल्कि वह उन्नत होगी नारी की उन प्रत्येक अवस्थाओं में उसके देवी के रूप में नमस्कार सम्मानपूर्ण आराधना करने से, जहाँ हम उसको माता-जैसी, बहन-जैसी, पत्नी-जैसी, पुत्री-जैसी मानते हैं, इतना ही नहीं गणिका के रूप में भी अपनाते हैं।

खाओ, स्वर्ग और ईश्वर को अपने तांबे और चांदी के रुपयों और सोने के डालरों से खरीदने इधर उधर मत भागो। भूखे मर रहे हो, खुद खाओ और अपने बालबच्चों को खिलाओ और कुछ काल के लिये चुप हो जावो। अपने बच्चों को विद्या दान दो, बुद्धि दान दो, यही तुह्म [म्हा] रा और यही ईश्वर का स्वर्ग है।

कहाँ हैं तुह्मा [म्हा] रे साधु, जिनके हुक्म से हाथ बांधे ये कलकत्ते के सेठ या पिशावर के ठेकेदार गुलाम फिर रहे है, अगर वे साधु हे तो क्यों नहीं ब्रह्मतेज से इनका शासन करते ? क्यों नहीं ताड़ते ? उल्लुओं के स्वर्ग क्यों बनने देते है ? हे राम ! इनको क्या हो गया है कि सती स्त्रियों के गहने बिकवा २ कर अपना अमूल्य सिर छिपाने के लिये लाख २ रुपये की कुटिया बनवा रहे है जहाँ मारकण्डेय ने अपनी सारी आयु तारों की धीमी २ रोशनी के नीचे काट दी। कौन से क्षेत्रों से ये रोटी खा रहे हैं ? जहां गरीबों का लहू निचोड़ २ जालिम रोटियाँ बनवा रहे हैं।

बहुत उछले तो पवित्रता के साधन के लिये महाराज पतञ्जलि का ग्रन्थ उठा लिया। होने लगे अब जप तप। माला पकड़ी, आँख मूंद ली,

तप

ध्यान होने लगा है ! अजी ! ध्यान किस वस्तु का, किस स्वरूप का देखने को आँख मूँदी है ? वहां तो कुछ नहीं मन कैसे लगे ? एक दो घण्टे मन को बेलगाम दौड़ाकर "शान्तिः शान्तिः शान्तिः" कर योगीजी नजर जमीन पर लगाए है। वह किसी अँगरेज के दफ्तर के हैडक्लर्क जा रहे है। कलम जब चलती है दूसरों का गला काटती है। लिखते तो टीक मेलट्रेन की तरह हैं, क्यों न हो योग का बल हाथ में है।

पतञ्जलि जी महाराज ने अपना ग्रन्थ मनुष्यों के लिये लिखा था। पशु तो उसका पाठ भी नहीं कर सक्के [सकते]। पतञ्जलि महाराज की

कृपा कटाक्ष से आपको कुछ बुद्धि उत्पन्न हो गई थी। मैंने तो पशु और पशुओं को भी जप तप संयम का साधन करते देखा। यह महाग्रन्थ काठके पुतलों के लिये कदापि नहीं लिखा गया जिनके हाथ में माला आई और सहस्त्रों वर्ष व्यतीत हुए। माला के मनके ही फिर रहे है। जप के साधनों का भी प्रश्न नहीं हुआ, कुटिलता, नीचता, कपटता अन्दर भरी हुई है और माला मनकों के ऊपर से हजारोंबार चली जाती है और इतनी सदियाँ हुई [हुई] अब तक चली ही जा रही है। जब तक हम मनुष्य नहीं बन जाते तब तक न कोई गुरु, न कोई वेद, न कोई शास्त्र, न कोई उपदेश तुह्वा [म्हा] रे लिये कल्याण का साधन हो सक्ता [सकता] है।

इसका सबूत मांगो तो इस बाहर से माने हुए भारत निवासियों के मकान, गली, कूँचे, घर का जीवन और सदियों का लम्बा जीवन देख लो। किसी ने इन काठके पुतलों का जो कहा कि तुम ऋषिसन्तान हो बस ! अब हम ऋषिसन्तान हैं। इसकी माला फिरनी शुरू हुई ! इधर न योग प्राप्त न हुआ, कैवल्य का कुछ सुख न देखा, इधर अब माला शुरू हुई है, देखिये ये कब ऋषिरूप होते हैं। हमारी अवस्था भयानक है मेरे विचार मे प्राचीन ऋषियों के साथ आजकल के भारतनिवासी उनकी शूद्रों की श्रेणी मे भी कम दर्जा के है, वे ऋषि अब होते तो सच कहता हूँ हमको म्लेच्छ कहकर हमसे धर्म-युद्ध रचते और हमें इस देश से निकाल इस धरती को फिर से आर्य्य भूमि बनाते। उन्होंने असुरों से युद्ध मचाया ही था और असुरों को परास्त किया ही था। जब असुरों को संहार न सके तो हम मैले कुचैले लोगों को अपने पास कब फटकने देते। क्या असुर, जन्म से उनके पुत्र पौत्र नहीं थे ?

तप नहीं, दान नहीं, ज्ञान ही सही। हाय ! वह वस्तु जिसको

पाकर शाक्यमुनि बुद्ध हो गये। जिसको पाकर मीराबाई हमारे हृदय और बुद्धि को हिला देनेवाले बल में बदल गई। जिसको पाकर एक तरखान का बच्चा आधे जगत् का अधिपति हो गया। जिसको पाकर जुलाहे चमार चण्डाल, ब्राह्मणों से भी उत्तम पदवी को प्राप्त हो गये। जिसके चमत्कार से बालक ध्रुव अटल पदवी को पाकर न हिलने वाला तारा हो गया। वह ज्ञान जिसकी महिमा गाते २ महाप्रभु चैतन्य अपनी सारी विद्या को भूल गये। जिसके महत्व से एक ऊँट लादनेवाला चाकर ऐसा बलवान हुआ कि कुल पृथ्वी उस ज्योतिष्मान् पुरुष के बल से उभड़ उठी। उसके आ जाने से तो और भला क्या बाकी रहा परन्तु नहीं, भारतनिवासियों ने एक प्रकार की पुड़िया और गोली बनाई है जिसको खाते ही चन्द्रमा चढ़ जाता है, ज्ञान हो जाता है। वह हो पास तो फिर कुछ और दरकार नहीं होता। ओ जगत्वालो ? बड़ी भारी ईजाद हुई है छोड़ दो अपनी पदार्थ विद्या जाने दो यह रेल, यह जहाज, ये नये २ खड़नखटोले, हवा में तैरनेवाले लोहे के जंजीरें, प्रकृति की क्यों छान बीन कर रहे हो ? इससे क्या लाभ ? हृषीकेश में वह अनमूल्य गोली बिकती हैं, और सिर्फ दो चराती के दाम, जिस गोली के खाने से सारे जन्म कट जाते हैं, सब पाश टूट जाते है, और जीवन मुक्त हो सारे संसार को अपनी उङ्गलियों पर नचा सकोगे, बिना नेत्र के, बिना बुद्धि के, बिना विद्या के, बिना हृदय के, बुद्धवाली निर्वाण, पतञ्जलि वाली कैवल्य, वैशेषिक वाली विक्षेप, वेदान्तवाली विदेहमुक्ति मिलती है, बेचनेवाले देखो वो जा रहे है, तीन चार पुस्तकें हाथ में है और तीन चार पुस्तको बगल में, आपको इन दो पुस्तकों के पढने से ही ब्रह्मकी प्राप्ति हो गई है, ज्ञान हो गया है, एक बेचारा पंजाबी साधु गाता था—

"अगे आप खुदा कहा ऊँ देसाँ, हुण बन बैठे खुदा दे प्यो यारो"

जब कि दूसरे ने यह वाक्य उच्चारण किया था—

"मन जोड़े मन काढ़े ये तो आप गुरु,

जो गुरु नहीं, निगुरा अंध मीत।"

प्यारे पाठक ! तुमको ये ज्ञान से क्या लाभ ? जो अपने जीवन का ही कुछ पता नहीं, तुमको हमारे ज्ञान नहीं है, और वह भी अंधेरी रात में ; दोनों मौन से लाई सौगात चाहिये, ऐसे छन्द की कला चाहिये— जिससे मर्मस्थल से चिनगारी सी निकल जल उठे, उस समय तो, अगर जी चाहे तो एक बात तुमसे या एक आध अक्षर पढ़ने से भी कुछ समझ रहे और कुछ लाभ हो।

यह बहुत गलती होती जाती है, इन कर्मों से इन सवालों से इन स्वप्नों व इस देश में जब पवित्रता आती है, ये समझो सारे ही अच्छे हैं, और ऊपर लिखे हुए कई एक साधन अधिक से अधिक पवित्रता के दाता हैं, पवित्रतावर्द्धक हैं परन्तु किसी २ को तो ये उस रंग के बढ़ाने के कारण होते हैं विद्या कैसी अच्छी चीज है, परन्तु कमीनेपन को [को] विद्या अर्थात् केवल पुस्तक पूजा तो अधिक से अधिक उन्नति देती है, चतुरता आती है, कमीनेपन और नीचता के लिये उत्तम से उत्तम शस्त्र [शास्त्र] और दलील प्रमाण मिल जाते हैं, बल कैसी उत्तम चीज है, परन्तु एक ज़ालिम के हाथ यह भी तो नीचता को अधिक करता है, धन इस समय के प्रचलित जीवन में कितना बड़ा सचित ज्ञान है, परन्तु देखो तो सही क्या कर रहा है ?—

इस तरह से हमें साधनों के अच्छे बुरे होने पर कोई पण्डिताई पूर्ण व्याख्या नहीं करनी, मुझे तो अपने देश की अपवित्रता के दूर करने और अपने भाई बहनों को मनुष्य बनाने के साधनों को देखना है, जब हम मनुष्य बन जायेंगे तब तो तलवार भी, ज्ञान भी, जप भी, तप भी, ब्रह्मचर्य भी वैराग्य भी सब के सब हमारे हाथ के कङ्कणों की तरह

शोभायमान होंगे, और गुणकारक होंगे, इस वास्ते बनो पहले साधारण मनुष्य, जीते जागते मनुष्य, हँसते खेलते मनुष्य, नहाये धोये मनुष्य, प्राकृतिक मनुष्य, जाननेवाले मनुष्य, पवित्रहृदय पवित्र बुद्धिवाले मनुष्य, प्रेम भरे, रस भरे, दिल भरे, जान भरे, प्राण भरे, मनुष्य। हल चलानेवाले, पसीना बहानेवाले, जान गँवानेवाले, सच्चे, कपट रहित, दरिद्रता रहित प्रेम से भीगे हुए, अग्नि से सूखे हुए मनुष्य, आवो सब परिवार मिलकर कुछ यत्न करें।

(इति पूर्वार्द्धम्)[२]

———

प्रकाशनकाल—अगहन-पौष संवत् १९६६ वि०
दिसम्बर १९०९ जनवरी १९१०

२. यह लेख अपूर्ण है।

आचरण की सभ्यता

विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन और राजत्व से भी आचरण की सभ्यता अधिक ज्योतिष्मती है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त करके एक कंगाल आदमी राजाओं के दिलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा सकता है। इस सभ्यता के दर्शन से कला, साहित्य और संगीत को अद्भुत सिद्धि प्राप्त होती है। राग अधिक मृदु हो जाता है; विद्या का तीसरा शिवनेत्र खुल जाता है, चित्रकारी का मौन राग अलापने लग जाता है; वक्ता चुप हो जाता है; लेखक की लेखनी थम जाती है; मूर्ति बनाने वाले के सामने नये कपोल, नये नयन और नयी छवि का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है। इस भाषा का निघण्टु शुद्ध श्वेत पत्रों वाला है। इसमें नाम मात्र के लिये भी शब्द नहीं। यह सभ्याचरण नाद करता हुआ भी मौन है, व्याख्यान देता हुआ भी व्याख्यान के पीछे छिपा है, राग गाता हुआ भी राग के सुर के भीतर पड़ा है। मृदु वचनों की मिठास में आचरण की सभ्यता मौन रूप से खुली हुई है। नम्रता, दया, प्रेम और उदारता सब के सब सभ्याचरण की भाषा के मौन व्याख्यान हैं। मनुष्य के जीवन पर मौन व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है और उसकी आत्मा का एक अंग हो जाता है।

न काला, न नीला, न पीला, न सुफेद, न पूर्वी, न पश्चिमी, न उत्तरी, न दक्षिणी, बे नाम, बे निशान, बे मकान—विशाल आत्मा के

आचरण से मौनरूपिणी सुगंधि सदा प्रसारित हुआ करती है। इसके मौन से प्रसूत प्रेम और पवित्रता-धर्म्म सारे जगत् का कल्याण करके विस्तृत होते है। इसकी उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाते है। तीक्ष्ण गरमी से जले भुने व्यक्ति आचरण के काले बादलो की बूँदाबाँदी से शीतल हो जाते है। मानसोत्पन्न शरदऋतु से क्लेशातुर हुए पुरुष इसकी सुगंधमय अटल बसंत ऋतु के आनन्द का पान करते है। आचरण के नेत्र के एक अश्रु से जगत् भर के नेत्र भीग जाते हैं। आचरण के आनन्द-नृत्य से उन्मदिष्णु होकर वृक्षों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते है। आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नये-नये विचार स्वयं ही प्रकट होने लगते है सूखे काष्ठ सचमुच ही हरे हो जाते हैं। सूखे कूपो में जल भर आता है। नये नेत्र मिलते हैं। कुल पदार्थों के साथ एक नया मैत्री-भाव फूट पड़ता है। सूर्य्य, जल, वायु, पुष्प, पत्थर, घास, पात, नर, नारी और बालक तक में एक अश्रुतपूर्व सुन्दर मूर्ति के दर्शन होने लगते है।

मौनरूपी व्याख्यान की महत्ता इतनी बलवती, इतनी अर्थवती और इतनी प्रभाववती होती है कि उसके सामने क्या मातृभाषा, क्या साहित्य-भाषा और क्या अन्य देश की भाषा सब की सब तुच्छ प्रतीत होती है। अन्य कोई भाषा दिव्य नही, केवल आचरण की मौन भाषा ही ईश्वरीय है। विचार करके देखो, मौन व्याख्यान किस तरह आपके हृदय की नाड़ी-नाड़ी में सुन्दरता को पिरो देता है! वह व्याख्यान ही क्या, जिसने हृदय की धुन को—मन के लक्ष्य को—ही न बदल दिया। चन्द्रमा की मंद-मंद हँसी का तारागण के कटाक्षपूर्ण प्राकृतिक मौन व्याख्यान का—प्रभाव किसी कवि के दिल में घुसकर देखो। सूर्य्यास्त होने के पश्चात्, श्रीकेशवचंद्र सेन और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने सारी रात, एक क्षण की तरह, गुजार दी; यह तो कल की बात है। कमल और

नरगिस में नयन देखने वाले नेत्रों से पूछो कि मौन व्याख्यान की प्रभुता कितनी दिव्य है।

प्रेम की भाषा शब्द-रहित है। नेत्रों की, कपोलों की मस्तक की भाषा भी शब्द-रहित है। जीवन का तत्त्व भी शब्द से परे है। सच्चा आचरण—प्रभाव, शील, अचल-स्थिति-संयुक्त आचरण—न तो साहित्य के लंबे व्याख्यानों से गढ़ा जा सकता है; न वेद की श्रुतियों के मीठे उपदेश से; न अंजील से; न कुरान से; न धर्मचर्चा से; न केवल सत्संग से। जीवन के अरण्य में धुसे हुए पुरुष के हृदय पर प्रकृति और मनुष्य के जीवन के मौन व्याख्यानों के यत्न से सुनार के छोटे हथौड़े की मंद मंद चोटों की तरह आचरण का रूप प्रत्यक्ष होता है।

बर्फ का दुपट्टा बाँधे हुए हिमालय इस समय तो अति सुन्दर, अति ऊँचा और अति गौरवान्वित मालूम होता है; परन्तु प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो डुबोकर और उनको अपने विचित्र हथौड़े से सुडौल कर करके इस हिमालय के दर्शन कराये हैं। आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊँचे कलश वाला मन्दिर है। यह वह आम का पेड़ नहीं जिसको मदारी एक क्षण में, तुम्हारी आँखों में मिट्टी डालकर, अपनी हथेली पर जमा दे। इसके बनने में अनन्त काल लगा है। पृथ्वी बन गई, सूर्य बन गया, तारागण आकाश में दौड़ने लगे; परन्तु अभी तक आचरण के सुन्दर रूप के पूर्ण दर्शन नहीं हुए। कहीं-कहीं उसकी अत्यल्प छटा अवश्य दिखाई देती है।

पुस्तकों में लिखे हुए नुसखों से तो और भी अधिक बदहज़मी हो जाती है। सारे वेद और शास्त्र भी यदि घोलकर पी लिये जायँ तो भी आदर्श आचरण की प्राप्ति नहीं होती। आचरण-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले को तर्क-वितर्क से कुछ भी सहायता नहीं मिलती। शब्द और वाणी तो साधारण जीवन के चोचले हैं। ये आचरण की गुप्त गुहा में नहीं

प्रवेश कर सकते। वहाँ इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वेद इस देश के रहने वालों के विश्वासानुसार ब्रह्म-वाणी है, परन्तु इतना काल व्यतीत हो जाने पर भी आज तक वे समस्त जगत् की भिन्न-भिन्न जातियों को संस्कृत भाषा न बुला सके—न समझा सके—न सिखा सके। यह बात हो कैसे ? ईश्वर तो सदा मौन है। ईश्वरीय मौन शब्द और भाषा का विषय नहीं। वह केवल आचरण के कान में गुरु-मन्त्र फूंक सकता है। वह केवल ऋषि के दिल में वेद का ज्ञानोदय कर सकता है।

किसी का आचरण वायु के झोंके से हिल जाय तो हिल जाय, परन्तु साहित्य और शब्द की गोलन्दाजी और आँधी में उसके सिर के एक बाल तक का बाँका न होना एक साधारण बात है। पुष्प की कोमल पंखड़ी के स्पर्श से किसी को रोमाञ्च हो जाय; जल की शीतलता से क्रोध और विषय-वासना शांत हो जायँ; बर्फ के दर्शन से पवित्रता आ जाय, सूर्य की ज्योति से नेत्र खुल जायँ—परन्तु अंगरेजी भाषा का व्याख्यान—चाहे वह कारलायल ही का लिखा हुआ क्यों न हो—बनारस में पंडितों के लिये रामरौला ही है। इसी तरह न्याय और व्याकरण की बारीकियों के विषय में पंडितों के द्वारा की गई चर्चायें और शास्त्रार्थ संस्कृत-ज्ञान-हीन पुरुषों के लिये स्टीम इंजिन के फप्-फप् शब्द से अधिक अर्थ नहीं रखते। यदि आप कहें व्याख्यानों द्वारा, उपदेशों द्वारा, धर्म्म चर्चा द्वारा कितने ही पुरुषों और नारियों के हृदय पर जीवन-व्यापी प्रभाव पड़ा है, तो उत्तर यह है कि प्रभाव शब्द का नहीं पड़ता—प्रभाव तो सदा सदाचरण का पड़ता है। साधारण उपदेश तो हर गिरजे, हर मन्दिर और हर मसजिद में होते हैं, परन्तु उनका प्रभाव तभी हम पर पड़ता है जब गिरजे का पादड़ी स्वयं ईसा होता है—मन्दिर का पुजारी स्वयं ब्रह्मर्षि होता है—मसजिद का मुल्ला स्वयं पैगम्बर और रसूल होता है।

यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षा के लिये—चाहे वह

कन्या जिस जाति की हो, जिस किसी मनुष्य की हो, जिस किसी देश की हो—अपने को गंगा में फेंक दे—चाहे फिर उसके प्राण यह काम करने से रहें चाहे जायँ—तो इस कार्य के प्रेरक आचरण की मौनमयी भाषा किस देश में, किस जाति में, और किस काल में, कौन नहीं समझ सकता? प्रेम का आचरण, दया का आचरण—क्या पशु और क्या मनुष्य—जगत् के सभी चराचर आप ही आप समझ लेते हैं। जगत् भर के बच्चों की भाषा इस भाष्य-हीन भाषा का चिह्न है। बालकों के इस शुद्ध मौन का नाद और हास्य भी सब देशों में एक ही सा पाया जाता है।

एक दफे एक राजा जंगल में शिकार खेलते खेलते रास्ता भूल गया। उसके साथी पीछे रह गये। घोड़ा उसका मर गया। बंदूक हाथ में रह गई। रात का समय आ पहुँचा। देश बर्फानी, रास्ते पहाड़ी। पानी बरस रहा है। रात अँधेरी है। ओले पड़ रहे हैं। ठंडी हवा उसकी हड्डियों तक को हिला रही है। प्रकृति ने, इस घड़ी, इस राजा को अनाथ बालक से भी अधिक बे सरो-सामान कर दिया। इतने में दूर एक पहाड़ की चोटी के नीचे टिमटिमाती हुई बत्ती की लौ दिखाई दी। कई मील तक पहाड़ के ऊँचे नीचे उतार-चढ़ाव को पार करने से थका हुआ, भूखा और सर्दी से ठिठरा हुआ राजा उस बत्ती के पास पहुँचा। यह एक गरीब पहाड़ी किसान की कुटी थी। इसमें किसान, उसकी स्त्री और उनके दो तीन बच्चे रहते थे। किसान शिकारी को अपनी झोपड़ी में ले गया। आग जलाई। उसके वस्त्र सुखाये। दो मोटी मोटी रोटियाँ और साग उसके आगे रखा। उसने खुद भी खाया और शिकारी को खिलाया। ऊन और रीछ के चमड़े के नरम और गरम बिछौने पर उसने शिकारी को सुलाया। आप बे-बिछौने के भूमि पर सो रहा। धन्य है तू, मनुष्य! तू ईश्वर से क्या कम है! तू भी तो पवित्र और निष्काम रक्षा का कर्ता है। तू भी तो आपन्न जनों का आपत्ति से उद्धार करने वाला है।

शिकारी कई रूसों का जार ही क्यों न हो, इस समय तो एक रोटी और गरम बिस्तर अग्नि की एक चिनगारी और टूटी छत पर—उसकी सारी राजधानियाँ बिक गईं। अब यदि वह अपना सारा राज्य उस किसान को, उसकी अमूल्य रक्षा के मोल में, देना चाहे तो भी वह तुच्छ है, यदि वह अपना दिल ही देना चाहे तो भी वह तुच्छ है। अब उस निर्धन और निरक्षर पहाड़ी किसान की दया और उदारता के कर्म के मौन व्याख्यान को देखो। चाहे शिकारी को पता लगे चाहे न लगे, परन्तु राजा के अन्तस् के मौन जीवन में उसने ईश्वरीय औदार्य्य की कलम गाड़ दी। शिकार में अचानक रास्ता भूल जाने के कारण जब इस राजा को ज्ञान का एक परमाणु मिल गया तब कौन कह सकता है कि शिकारी का जीवन अच्छा नहीं। क्या जङ्गल के ऐसे जीवन में, इसी प्रकार के व्याख्यानों से, मनुष्य का जीवन, शनैः-शनैः, नया रूप धारण नहीं करता? जिसने शिकारी के जीवन के दुःखों को नहीं सहन किया उसको क्या पता कि ऐसे जीवन की तह में किस प्रकार और किस मिठास के आचरण का विकास होता है। इसी तरह क्या एक मनुष्य के जीवन में और क्या एक जाति के जीवन में—पवित्रता और अपवित्रता भी जीवन के आचरण को भली भाँति गढ़ती है—और उस पर भली भाँति कुन्दन करती है। जगाई और मधाई यदि पक्के लुटेरे न होते तो महाप्रभु चैतन्य के आचरण-सम्बन्धी मौन व्याख्यान को ऐसी दृढ़ता से कैसे ग्रहण करते। नग्न नारी को स्नान करते देख सूरदासजी यदि कृष्णार्पण किये गये अपने हृदय को एक बार फिर उस नारी की सुन्दरता निरखने में न लगाते और उस समय फिर एक बार अपवित्र न होते तो सूरसागर में प्रेम का वह मौन व्याख्यान—आचरण का वह उत्तम आदर्श—कैसे दिखाई देता। कौन कह सकता है कि जीवन पवित्रता और अपवित्रता के प्रतिद्वन्द्वी भाव से संसार के आचरणों के [की] एक अद्भुत पवित्रता का विकास

नहीं होता। यदि मेरीमाडलिन वेश्या न होती तो कौन उसे ईसा के पास ले जाता और ईसा के मौन व्याख्यान के प्रभाव से किस तरह आज वह हमारी पूजनीया माता बनती? कौन कह सकता है कि ध्रुव की सौतेली माता अपनी कठोरता से ध्रुव को अटल बनाने में वैसी ही सहायक नहीं हुई जैसी की स्वयं ध्रुव की माता।

मनुष्य का जीवन इतना विशाल है कि उसके आचरण को रूप देने के लिये नाना प्रकार के ऊँच नीच और भले बुरे विचार, अमीरी और गरीबी, उन्नति और अवनति इत्यादि सहायता पहुँचाते हैं। पवित्र अपवित्रता उतनी ही बलवती है, जितनी कि पवित्र पवित्रता। जो कुछ जगत् में हो रहा है वह केवल आचरण के विकास के अर्थ हो रहा है। अन्तरात्मा वही काम करती है जो बाह्य पदार्थों के संयोग का प्रतिबिम्ब होता है। जिनको हम पवित्रात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन-किन कूपों से निकल कर वे अब उदय को प्राप्त हुए हैं? जिनको हम धर्मात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन-किन अधर्मों को करके वे धर्म-ज्ञान को पा सके हैं? जिनको हम सभ्य कहते हैं और जो अपने जीवन में पवित्रता को ही सब कुछ समझते हैं, क्या पता है वे कुछ काल पूर्व बुरी और अधर्म अपवित्रता में लिप्त रहे हों? अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों से भरी हुई अंधकार-मय कोठरी से निकलकर ज्योति और स्वच्छ वायु से परिपूर्ण खुले हुए देश में जब तक अपना आचरण अपने नेत्र न खोल चुका हो तब तक धर्म के गूढ़ तत्त्व कैसे समझ में आ सकते हैं। नेत्र रहित को सूर्य से क्या लाभ? हृदय-रहित को प्रेम से क्या लाभ? बहरे को राग से क्या लाभ? कविता, साहित्य, पीर, पैगम्बर, गुरु, आचार्य, ऋषि आदि के उपदेशों से लाभ उठाने का यदि आत्मा में बल नहीं तो उनसे क्या लाभ? जब तक यह जीवन का बीज पृथ्वी के मलमूत्र के ढेर में पड़ा है, अथवा जब तक वह खाद की गरमी से अङ्कुरित नहीं हुआ

और प्रस्फुटित होकर उनसे दो नये पत्ते ऊपर नहीं निकल आए, तब तक ज्योति और वायु उसके किस काम के।

जगत् के अनेक सम्प्रदाय अनदेखी और अनजानी वस्तुओं का वर्णन करते हैं, पर अपने नेत्र तो अभी माया के पटल से बन्द हैं—और धर्मानुभव के लिए मायाजाल में उनका बन्द होना आवश्यक भी है। इस कारण मैं उनके अर्थ कैसे जान सकता हूँ ? वे भाव—वे आचरण—जो उन आचार्यों के हृदय में थे और जो उनके शब्दों के अन्तर्गत मौनावस्था में पड़े हुए हैं, उनके साथ मेरा सम्बन्ध जब तक मेरा भी आचरण उसी प्रकार का न हो जाय तब तक, हो ही कैसे सकता है ? ऋषि को तो मौन पदार्थ भी उपदेश दे सकते हैं; टूटे फूटे शब्द भी अपना अर्थ भासित कर सकते हैं, तुच्छ से भी तुच्छ वस्तु उसकी आँखों में उसी महात्मा का चिह्न है जिसका चिह्न उत्तम से उत्तम पदार्थ है। राजा में फकीर छिपा है और फकीर में राजा ! बड़े से बड़े पंडित में मूर्ख छिपा है और बड़े से बड़े मूर्ख में पंडित। वीर में कायर और कायर में वीर सोता है। पापी में महात्मा और महात्मा में पापी डूबा हुआ है।

वह आचरण, जो धर्म-सम्प्रदायों के अनुच्चारित शब्दों को सुनाता है, हममें कहाँ ? जब वही नहीं तब फिर क्यों न ये सम्प्रदाय हमारे मानसिक महाभारतों के कुरुक्षेत्र बनें ? क्यों न अप्रेम, अपवित्रता, हत्या और अत्याचार इन सम्प्रदायों के नाम से हमारा खून करें। **कोई भी धर्मसम्प्रदाय आचरण-रहित पुरुषों के लिये कल्याणकारक नहीं हो सकता और आचरणवाले पुरुषों के लिये सभी धर्म-सम्प्रदाय कल्याणकारक हैं। सच्चा साधु धर्म को गौरव देता है, धर्म किसी को गौरवान्वित नहीं करता।**

आचरण का विकास जीवन का परमोद्देश है। आचरण के विकास के लिये नाना प्रकार की सामग्रियों का, जो संसार-संभूत शारीरिक, प्राकृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन में वर्तमान है, उन सबकी [सबका]—

क्या एक पुरुष और क्या एक जाति के आचरण के विकास के साधनों के सम्बन्ध में विचार करना होगा। आचरण के विकास के लिये जितने कर्म है उन सबको आचरण के संगठन कर्ता धर्म के अङ्ग मानना पड़ेगा। चाहे कोई कितना ही बड़ा महात्मा क्यों न हो, वह निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि यों ही करो, और किसी तरह नहीं। आचरण की सभ्यता की प्राप्ति के लिये वह सबको एक पथ नहीं बता सकता। आचरण-शील महात्मा स्वयं भी किसी अन्य की बनाई हुई सड़क से नहीं आया, उसने अपनी सड़क स्वयं ही बनाई थी। इसी से उसके बनाये हुए रास्ते पर चल कर हम भी अपने आचरण को आदर्श के ढाँचे में नहीं ढाल सकते। हमें अपना रास्ता अपने जीवन की कुदाली की एक-एक चोट से रात-दिन बनाना पड़ेगा और उसी पर चलना भी पड़ेगा। हर किसी को अपने देश कालानुसार रामप्राप्ति के लिये अपनी नैया आप ही बनानी पड़ेगी और आप ही चलानी भी पड़ेगी।

यदि मुझे ईश्वर का ज्ञान नहीं तो ऐसे ज्ञान ही से क्या प्रयोजन? जब तक मैं अपना हथौड़ा ठीक ठीक चलाता हूँ और रूपहीन लोहे को तलवार के रूप में गढ़ देता हूँ तब तक यदि मुझे ईश्वर का ज्ञान नहीं तो नहीं होने दो। उस ज्ञान से मुझे प्रयोजन ही क्या? तब तक मैं अपना उद्धार ठीक और शुद्ध रीति से किये जाता हूँ तब तक यदि मुझे आध्यात्मिक पवित्रता का ज्ञान नहीं होता तो न होने दो। उससे सिद्धि ही क्या हो सकती है? जब तक किसी जहाज के कप्तान के हृदय में इतनी वीरता भरी हुई है कि वह महाभयानक समय में भी अपने जहाज को नहीं छोड़ता तब तक यदि वह मेरी और तेरी दृष्टि में शराबी और स्त्रैण है तो उसे वैसा ही होने दो। उसकी बुरी बातों से हमें प्रयोजन ही क्या? आँधी हो—बरफ हो—बिजली की कड़क हो—समुद्र का तूफान हो—वह दिन रात आँख खोले अपने जहाज की रक्षा के लिये जहाज के पुल पर घूमता हुआ

अपने धर्म का पालन करता है। वह अपने जहाज के साथ समुद्र में डूब जाता है, परन्तु अपना जीवन बचाने के लिये कोई उपाय नहीं करता। क्या उसके आचरण का यह अंश मेरे-तेरे बिस्तर और आसन पर बैठ बिठाये कहे हुए निरर्थक शब्दों के भाव से कम महत्व का है?

न मैं किसी गिरजे में जाता हूँ और न किसी मन्दिर में, न मैं नमाज पढ़ता हूँ और न रोजा ही रखता हूँ, न संध्या ही करता हूँ और न कोई देवपूजा ही करता हूँ; न किसी आचार्य्य के नाम का मुझे पता है और न किसी के आगे मैंने सिर ही झुकाया है। तो इससे प्रयोजन ही क्या और इससे हानि भी क्या? मैं तो अपनी खेती करता हूँ, अपने हल और बैलों को प्रातःकाल उठकर प्रणाम करता हूँ; मेरा जीवन जंगल के पेड़ों और पत्तियों की सङ्गति में गुजरता है, आकाश के बादलों को देखते मेरा दिन निकल जाता है। मैं किसी को धोखा नहीं देता; हाँ, यदि मुझे कोई धोखा दे तो उससे मेरी कोई हानि नहीं। मेरे खेत में अन्न उग रहा है; मेरा घर अन्न से भरा है; बिस्तर के लिये मुझे एक कमली काफी है, कमर के लिये लँगोटी और सिर के लिये एक टोपी बस है। हाथ-पाँव मेरे बलवान् हैं; शरीर मेरा अरोग्य है; भूख खूब लगती है, बाजरा और मकई, छाछ और दही, दूध और मक्खन मुझे और मेरे बच्चों को खाने के लिये मिल जाता है। क्या इस किसान की सादगी और सचाई में वह मिठास नहीं जिसकी प्राप्ति के लिये भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदाय लंबी-चौड़ी और चिकनी-चुपड़ी बातों द्वारा दीक्षा दिया करते हैं?

जब साहित्य, सङ्गीत और कला की अति ने रोम को घोड़े से उतारकर मखमल के गद्दों पर लिटा दिया—जब आलस्य और विषय-विकार की लम्पटता ने जङ्गल और पहाड़ की साफ हवा के असभ्य और उद्दण्ड जीवन से रोमवालों का मुख मोड़ दिया तब रोम नरम तकियों और बिस्तरों पर ऐसा सोया कि अब तक न आप जागा और न कोई

उसे करना ही पड़ा। एंग्लो-सैक्सन जाति ने जो उच्च पद प्राप्त किया वह उसने अपने समुद्र, जंगल और पर्वत से सम्बन्ध रखनेवाले जीवन से ही प्राप्त किया। इस जाति की उन्नति लड़ने भिड़ने मरने मारने, लूटने और लूटे जाने, शिकार करने और शिकार होनेवाले जीवन का ही परिणाम है। लोग कहते हैं, केवल धर्म ही जाति को उन्नत करता है। यह ठीक है, परन्तु यह धर्मांकुर, जो जाति को उन्नत करता है, इस असभ्य, कमीने पापमय जीवन की गन्दी राख के ढेर के ऊपर नहीं उगता। मन्दिरों और गिरजों की मन्द मन्द टिमटिमाती हुई मोमबत्तियों की रोशनी से योरप इस उच्चावस्था को नहीं पहुँचा। वह कठोर जीवन, जिसको देश-देशान्तरों को ढूँढते फिरते रहने के बिना शान्ति नहीं मिलती; जिसकी अन्तर्ज्वाला दूसरी जातियों को जीतने, लूटने, मारने और उन पर राज करने के बिना मन्द नहीं पड़ती—केवल वही विशाल जीवन समुद्र की छाती पर मूँग दलकर और पहाड़ों को फाँदकर उनको उस महानता की ओर ले गया और ले जा रहा है। राबिन हुड की प्रशंसा में इंग्लैंड के जो कवि अपनी सारी शक्ति खर्च कर देते हैं उन्हें तत्त्वदर्शी कहना चाहिये, क्योंकि राबिन हुड जैसे भौतिक पदार्थों से ही नेलसन और वेलिंगटन जैसे अँगरेज वीरों की हड्डियाँ तैयार हुई थी। लड़ाई के आजकल के सामान—गोले, बारूद, जंगी जहाज और तिजारती बेड़ों आदि—को देखकर कहना पड़ता है कि इनसे वर्तमान सभ्यता से भी कहीं अधिक उच्च सभ्यता का जन्म होगा।

यदि योरप के समुद्रों में जंगी जहाज मक्खियों की तरह न फैल जाते और योरप का घर घर सोने और हीरे से न भर जाता तो वहाँ पदार्थ-विद्या के सच्चे आचार्य और ऋषि कभी न उत्पन्न होते। पश्चिमीय ज्ञान से मनुष्य मात्र को लाभ हुआ है। ज्ञान का वह सेहरा—बाहरी सभ्यता की अन्तर्वर्तिनी आध्यात्मिक सभ्यता का वह मुकुट—जो आज

मनुष्य जाति ने पहन रखा है योरप को कदापि न प्राप्त होता, यदि धन और तेज को एकत्र करने के लिए योरपनिवासी इतने कमीने न बनते। यदि सारे पूर्वी जगत् ने इस महत्ता के लिए अपनी शक्ति से अधिक भी चंदा देकर सहायता की तो बिगड़ क्या गया? एक तरफ जहाँ योरप के जीवन का एक अंश असभ्य प्रतीत होता है—कमीना और कायरता से भरा मालूम होता है—वहीं दूसरी ओर योरप के जीवन का वह भाग, जिसमे विद्या और ज्ञान के ऋषियों का सूर्य चमक रहा है, इतना महान् है कि थोड़े ही समय में पहले अंश को मनुष्य अवश्य ही भूल जायँगे।

धर्म और आध्यात्मिक विद्या के पौधे को ऐसी आरोग्य-वर्धक भूमि देने के लिये, जिसमे वह प्रकाश और वायु में सदा खिलता रहे, सदा फूलता रहे, सदा फलता रहे, यह आवश्यक है कि बहुत से हाथ एक अनंत प्रकृति के ढेर को एकत्र करते रहें। धर्म की रक्षा के लिये क्षत्रियों को सदा ही कमर बाँधे हुए सिपाही बने रहने का भी तो यही अर्थ है। यदि कुल समुद्र का जल उड़ा दो तो रेडियम धातु का एक करण कहीं हाथ लगेगा। आचरण का रेडियम—क्या एक पुरुष का, और क्या जाति का, और क्या एक जगत् का—सारी प्रकृति को खाद बनाये बिना—सारी प्रकृति को हवा में उड़ाये बिना भला कब मिलने का है? प्रकृति को मिथ्या करके नहीं उड़ाना; उसे उड़ाकर मिथ्या करना है? समुद्रों में डोरा डालकर अमृत निकाला है। सो भी कितना? जरा सा! संसार की खाक छान कर आचरण का स्वर्ण हाथ आता है। क्या बैठे बिठाए भी वह मिल सकता है?

हिंदुओं का संबंध यदि किसी प्राचीन असभ्य जाति के साथ रहा होता तो उनके वर्तमान वंश में अधिक बलवान् श्रेणी के मनुष्य होते—तो उनमें भी ऋषि, पराक्रमी, जनरल और धीर वीर पुरुष उत्पन्न होते। आजकल तो वे उपनिषदों के ऋषियों के पवित्रता-मय

प्रेम के जीवन को देखकर अहङ्कार में मग्न हो रहे हैं और दिन पर दिन अधोगति की ओर जा रहे हैं। यदि वे किसी जंगली जाति की संतान होते तो उनमें भी ऋषि और बलवान् योद्धा होते। ऋषियों के पैदा करने के लिये अलग पृथ्वी का बन जाना तो आसान है; परन्तु ऋषियों को अपनी उन्नति के लिये जल और पृथ्वी बनाना कठिन [illegible] क्योंकि ऋषि तो केवल अनन्त उन्नति कर सकते हैं, हमारी जैसी दुर-वस्था पर कुरबान जाते हैं। [illegible] प्राचीन काल में, योरप में, ऋषि अनन्त थे; परन्तु आजकल तो कुछ [illegible] हैं। उनकी अवस्था के ऊपर ऋषि-[illegible] की उच्च [illegible] हुआ नहीं है और हमारे ऋषियों के जीवन के फूल की [illegible] अवस्था का [illegible] बढ़ा हुआ है। सर ऋषि जटा बढ़ाये रहना, अर्थात् अपनी हड्डियों चोटी के ऊपर इन फूलों को सदा धारण करते रहना ही जीवन के सिद्धान्तों का पालन करना है।

ब्राह्मणों को बैठे-बैठे आनन्द का समुद्र में गिरा कि गिरा? एक कदम और, और उस के नीचे! कारण इसका केवल यही है कि यह अपने अद्भुत स्वप्न देखता रहा है और विचार करता रहा है कि मैं चोटी के किला को जकड़ता हूँ; हवा में सिंहासन जमा सकता हूँ; पृथ्वी से अपना आसन उठा सकता हूँ; योगसिद्धि द्वारा सूर्य और ताराओं के गूढ़ भेदों को जान सकता हूँ, समुद्र की लहरों पर बैठके सो सकता हूँ। वह इसी प्रकार के स्वप्न देखता रहा; परन्तु अब तक न संसार ही की और न राम ही की दृष्टि में इसका एक भी वचन सत्य सिद्ध हुआ। यदि अब भी इसकी निद्रा न खुली तो बेधड़क शंख फूँक दो! कूच का घड़ियाल बजा दो! कह दो, भारतवासियों का इस असार संसार से कूच हुआ!

लेखक का तात्पर्य केवल यह है कि आचरण केवल मन से स्वप्नों से कभी नहीं बना करता। उसका सिर तो शिलाओं के ऊपर घिस घिसकर

बनता है; उसके फूल तो सूर्य्य की गरमी और समुद्र के नमकीन पानी से बारम्बार भीगकर और सूखकर अपनी लाली पकड़ते हैं।

हजारों साल से धर्म-पुस्तकें खुली हुई हैं। अभी तक उनसे तुम्हे कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। तो फिर अपने हठ में पड़े क्यों मर रहे हो? अपनी-अपनी स्थिति को क्यों नही देखते? अपनी-अपनी कुदाली हाथ मे लेकर क्यों आगे नहीं बढ़ते? पीछे मुड़कर देखने से क्या लाभ? अब तो खुले जगत् में अपने अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ दो। तुममें से हर एक को अपना अश्वमेध करना है। चलो तो सही। अपनी आपकी परीक्षा करो।

धर्म के आचरण की प्राप्ति यदि ऊपरी आडम्बरों से होती तो आजकल भारत-निवासी सूर्य्य के समान शुद्ध आचरण वाले हो जाते। भाई! माला से तो जप नहीं होता। गङ्गा नहाने से तो तप नही होता। पहाड़ों पर चढ़ने से प्राणायाम हुआ करता है, समुद्र में तैरने से नेती धुलती है; आँधी, पानी और साधारण जीवन के ऊँच-नीच, गरमी-सरदी, गरीबी-अमीरी को झेलने मे तप हुआ करता है। आध्यात्मिक धर्म के स्वप्नों की शोभा तभी भली लगती है जब आदमी अपने जीवन का धर्म पालन करे। खुले समुद्र मे अपने जहाज पर बैठ कर ही समुद्र की आध्यात्मिक शोभा का विचार होता है। भूखे को तो चंद्र और सूर्य भी केवल आटे की बड़ी-बड़ी दो रोटियाँ से प्रतीत होते है। कुटिया में बैठकर ही धूप, आँधी और बर्फ की दिव्य शोभा का आनन्द आ सकता है। प्राकृतिक सभ्यता के आने ही पर मानसिक सभ्यता आती है और तभी स्थिर भी रह सकती हैं। मानसिक सभ्यता के होने पर ही आचरण-सभ्यता की प्राप्ति सम्भव है, और तभी वह स्थिर भी हो सकती है। जब तक निर्धन पुरुष पाप से अपना पेट भरता है तब तक धनवान् पुरुष के शुद्धाचरण की पूरी परीक्षा नहीं। इसी प्रकार जब तक अज्ञानी का आचरण अशुद्ध है, तब तक ज्ञानवान् के आचरण की पूरी

परीक्षा नहीं— तब तक जगत् में, आचरण की सभ्यता का राज्य नहीं।

आचरण की सभ्यता का देश ही निराला है। उसमें न शारीरिक झगड़े हैं, न मानसिक, न आध्यात्मिक। न उसमें विद्रोह है; न जंग ही का नामोनिशान है और न वहाँ कोई ऊँचा है, न नीचा। न कोई वहाँ धनवान् है और न कोई वहाँ निर्धन। वहाँ प्रकृति का नाम नहीं, वहाँ तो प्रेम और एकता का अखंड राज्य रहता है।

जिस समय बुद्धदेव ने स्वयं अपने हाथों से हाफिज शीराजी का सीना उलट कर उसे मौन-आचरण का दर्शन कराया उस समय फारस में सारे बौद्धों को निर्वाण के दर्शन हुए और सबके सब आचरण की सभ्यता के देश को प्राप्त हो गए।

जब पैगम्बर मुहम्मद ने ब्राह्मण को चीरा और उसके मौन आचरण को नंगा किया तब सारे मुसलमानों को आश्चर्य हुआ कि काफिर में मोमिन किस प्रकार गुप्त था। जब शिव ने अपने हाथ से ईसा के शब्दों को परे फेंककर उसकी आत्मा के नङ्गे दर्शन कराये तब हिन्दू चकित हो गये कि वह नग्न करने अथवा नग्न होनेवाला उनका कौन सा शिव था? हम तो एक दूसरे में छिपे हुए हैं! हर एक पदार्थ को परमाणुओं में परिणत करके उसके प्रत्येक परमाणु में अपने आपको ढूँढ़ना—अपने आपको एकत्र करना—अपने आचरण को प्राप्त करना है। आचरण की प्राप्ति एकता की दशाकी प्राप्ति है। चाहे फूलों की शय्या हो चाहे काटों चाहे निर्धन की; हो धनवान् चाहे राजा हो चाहे किसान, चाहे रोगी हो चाहे नीरोग—हृदय इतना विशाल हो जाता है कि उसमें सारा संसार बिस्तर लगाकर आनन्द से आराम कर सकता है, जीवन आकाशवत् हो जाता है और नाना-रूप और रङ्ग अपनी अपनी शोभा में बेखटके निर्भय होकर स्थिर रह सकते हैं। आचरणवाले नयनों का मौन व्याख्यान केवल यह है—"सब कुछ अच्छा है, सब कुछ भला है"। जिस समय आचरण की सभ्यता संसार

बनता है; उसके फूल तो सूर्य्य की गरमी और समुद्र के नमकीन पानी से बारम्बार भीगकर और सूखकर अपनी लाली पकड़ते है।

हजारों साल से धर्म-पुस्तकें खुली हुई है। अभी तक उनसे तुम्हें कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। तो फिर अपने हठ में पड़े क्यों मर रहे हो? अपनी-अपनी स्थिति को क्यों नही देखते? अपनी-अपनी कुदाली हाथ मे लेकर क्यों आगे नहीं बढ़ते? पीछे मुड़कर देखने से क्या लाभ? अब तो खुले जगत् में अपने अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ दो। तुममें से हर एक को अपना अश्वमेध करना है। चलो तो सही। अपनी आपकी परीक्षा करो।

धर्म के आचरण की प्राप्ति यदि ऊपरी आडम्बरों से होती तो आजकल भारत-निवासी सूर्य्य के समान शुद्ध आचरण वाले हो जाते। भाई! माला से तो जप नहीं होता। गङ्गा नहाने से तो तप नही होता। पहाड़ों पर चढ़ने से प्राणायाम हुआ करता है, समुद्र में तैरने से नेती धुलती है; आँधी, पानी और साधारण जीवन के ऊँच-नीच, गरमी-सन्दी, गरीबी-अमीरी को झेलने मे तप हुआ करता है। आध्यात्मिक धर्म के स्वप्नों की शोभा तभी भली लगती है जब आदमी अपने जीवन का धर्म पालन करे। खुले समुद्र में अपने जहाज पर बैठ कर ही समुद्र की आध्यात्मिक शोभा का विचार होता है। भूखे को तो चंद्र और सूर्य भी केवल आटे की बड़ी-बड़ी दो रोटियाँ से प्रतीत होते है। कुटिया में बैठकर ही धूप, आँधी और बर्फ की दिव्य शोभा का आनन्द आ सकता है। प्राकृतिक सभ्यता के आने ही पर मानसिक सभ्यता आती है और तभी स्थिर भी रह सकती हैं। मानसिक सभ्यता के होने पर ही आचरण-सभ्यता की प्राप्ति सम्भव है, और तभी वह स्थिर भी हो सकती है। जब तक निर्धन पुरुष पाप से अपना पेट भरता है तब तक धनवान् पुरुष के शुद्धाचरण की पूरी परीक्षा नहीं। इसी प्रकार जब तक अज्ञानी का आचरण अशुद्ध है, तब तक ज्ञानवान् के आचरण की पूरी

परीक्षा नहीं— तब तक जगत् में, आचरण की सभ्यता का राज्य नहीं।

आचरण की सभ्यता का देश ही निराला है। उसमें न शारीरिक झगड़े हैं, न मानसिक, न आध्यात्मिक। न उसमें विद्रोह है; न जंग ही का नामोनिशान है और न वहाँ कोई ऊँचा है, न नीचा। न कोई वहाँ धनवान् है और न कोई वहाँ निर्धन। वहाँ प्रकृति का नाम नहीं, वहाँ तो प्रेम और एकता का अखंड राज्य रहता है।

जिस समय बुद्धदेव ने स्वयं अपने हाथों से हाफिज शीराजी का सीना उलट कर उसे मौन-आचरण का दर्शन कराया उस समय फारस में सारे बौद्धों को निर्वाण के दर्शन हुए और सबके सब आचरण की सभ्यता के देश को प्राप्त हो गए।

जब पैगम्बर मुहम्मद ने ब्राह्मण को चीरा और उसके मौन आचरण को नंगा किया तब सारे मुसलमानों को आश्चर्य हुआ कि काफिर में मोमिन किस प्रकार गुप्त था। जब शिव ने अपने हाथ से ईसा के शब्दों को परे फेंककर उसकी आत्मा के नङ्गे दर्शन कराये तब हिन्दू चकित हो गये कि वह नग्न करने अथवा नग्न होनेवाला उनका कौन सा शिव था? हम तो एक दूसरे में छिपे हुए हैं! हर एक पदार्थ को परमाणुओं में परिणत करके उसके प्रत्येक परमाणु में अपने आपको ढूंढ़ना— अपने आपको एकत्र करना—अपने आचरण को प्राप्त करना है। आचरण की प्राप्ति एकता की दशाकी प्राप्ति है। चाहे फूलों की शय्या हो चाहे कांटों चाहे निर्धन की; हो धनवान् चाहे राजा हो चाहे किसान, चाहे रोगी हो चाहे नीरोग—हृदय इतना विशाल हो जाता है कि उसमें सारा संसार बिस्तर लगाकर आनन्द से आराम कर सकता है, जीवन आकाशवत् हो जाता है और नाना-रूप और रङ्ग अपनी अपनी शोभा में बेखटके निर्भय होकर स्थिर रह सकते हैं। आचरणवाले नयनों का मौन व्याख्यान केवल यह है —"सब कुछ अच्छा है, सब कुछ भला है"। जिस समय आचरण की सभ्यता संसार

में आती है उस समय नीले आकाश में मनुष्य को वेद-ध्वनि सुनाई देती है, नर-नारी पुष्पवत् खिलते जाते हैं, प्रभात हो जाता है, प्रभात का गजर बज जाता है, नारद की वीणा अलापने लगती है, ध्रुव का शंख गूंज उठता है, प्रह्लाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू बजता है, कृष्ण की बांसुरी की धुन प्रारम्भ हो जाती है। जहां ऐसे शब्द होते हैं, जहाँ ऐसे पुरुष रहते हैं, जहाँ ऐसी ज्योति होती है, वही आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है। वही देश मनुष्य का स्वदेश है। जब तक घर न पहुँच जाय, सोना अच्छा नहीं, चाहे वेदों में, चाहे इंजील में, चाहे कुरान में, चाहे त्रिपिटक में, चाहे इस स्थान में, चाहे उस स्थान में, कहीं भी सोना अच्छा नहीं। आलस्य मृत्यु है। लेख तो पेड़ों के चित्र सदृश होते हैं, पेड़ तो होते ही नहीं जो फल लावें। लेखक ने यह चित्र इसलिये भेजा है कि सरस्वती में चित्र को देखकर शायद कोई असली पेड़ को जाकर देखने का यत्न करे।

प्रकाशन-काल—माघ-फाल्गुन संवत १९६८ वि०
मार्च-फरवरी सन् १९१२ ई०

मजदूरी और प्रेम—

हल चलाने और भेड़ चरानेवाले प्रायः स्वभाव से ही साधु होते हैं। हल चलानेवाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनकी हवनशाला है। उनके हवनकुंड की ज्वाला की किरणें चावल के लंबे और सुफेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूँ के लाल-लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की डलियाँ-सी हैं। मैं जब कभी अनार के फूल और फल देखता हूँ तब मुझे बाग के माली का रुधिर याद आ जाता है। उनकी मेहनत के कण जमीन में गिरकर उगे हैं, और हवा तथा प्रकाश की सहायता से मीठे फलों के रूप में नजर आ रहे हैं। किसान मुझे अन्न में, फूल में, फल में, आहुति हुआ सा दिखाई पड़ता है। कहते हैं, ब्रह्माहुति से जगत् पैदा हुआ है। अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरी प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में, फल-फल में बिखर रहा है। वृक्षों की तरह उसका भी जीवन एक प्रकार का मौन जीवन है। वायु, जल, पृथ्वी, तेज और आकाश की नीरोगता इसी के हिस्से में है। विद्या यह नहीं पढ़ा; जप और तप यह नहीं करता; सन्ध्या-वन्दनादि इसे नहीं आते; ज्ञान, ध्यान का इसे पता नहीं; मन्दिर, मस्जिद, गिरजे से इसे कोई सरोकार नहीं; केवल साग-पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है। ठंडे चश्मों और बहती हुई नदियों के शीतल जल से यह अपनी प्यास बुझा लेता है। प्रातःकाल उठकर यह अपने हल बैलों को नमस्कार करता है और हल जोतने चल देता है। दोपहर की धूप इसे भाती है। इसके

हल चलाने वाले का जीवन

बच्चे मिट्टी ही में खेल खेलकर बड़े हो जाते हैं। इसको और इसके परिवार को बैल और गौवों से प्रेम है। उनकी यह सेवा करता है। पानी बरसानेवाले के दर्शनार्थ आँखें नीले आकाश की ओर उठती है। नयनों की भाषा में यह प्रार्थना करता है। सायं और प्रातः, दिन और रात, विधाता इसके हृदय में अचिन्तनीय और अद्भुत आध्यात्मिक भावों की वृष्टि करता है। यदि कोई इसके घर आ जाता है तो यह उसको मृदु वचन, मीठे जल और अन्न से तृप्त करता है। धोखा यह किसी को नहीं देता। यदि इसको कोई धोखा दे भी दे, तो उसका इसे ज्ञान नहीं होता; क्योंकि इसकी खेती हरी भरी है; गाय इसको दूध देती है; स्त्री इसकी आज्ञाकारिणी है; मकान इसका पुण्य और आनन्द का स्थान है। पशुओं को चराना, नहलाना, खिलाना, पिलाना, उनके बच्चों को अपने बच्चों की तरह सेवा करना, खुले आकाश के नीचे उनके साथ रातें गुजार देना क्या स्वाध्याय से कम है? दया, वीरता और प्रेम जैसा इन किसानों में देखा जाता है, अन्यत्र मिलने का नहीं। गुरु नानक ने ठीक कहा है—"भोले भाव मिले रघुराई" भोले भाले किसानों को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है उनकी फूस की छतों में से सूर्य्य और चंद्रमा छन छनकर उनके बिस्तरों पर पड़ते हैं। ये प्रकृति के जवान साधु हैं। जब कभी मैं इन बे-मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है। जब मुझे किसी फकीर के दर्शन होते है तब मुझे मालूम होता है कि नङ्गे सिर, नङ्गे पाँव, एक टोपी सिर पर, एक लँगोटी कमर में, एक काली कमली कन्धे पर, एक लम्बी लाठी हाथ में लिये हुए गावों का मित्र, बैलों का हमजोली, पक्षियों का हमराज, महाराजाओं का अन्नदाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठानेवाला, भूखों और नंगों का पालने वाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।

एक बार मैंने एक बुड्ढे गड़रिये को देखा। घना जङ्गल है। हरे-हरे वृक्षों के नीचे उसकी सुफेद ऊनवाली भेड़ें अपना मुँह नीचे किये हुए कोमल कोमल पत्तियाँ खा रही हैं। गड़रिया बैठा आकाश की ओर देख रहा है। ऊन कातता जाता है। उसकी आँखों में प्रेम-लाली छाई हुई है। वह नीरोगता की पवित्र मदिरा से मस्त हो रहा है। बाल उसके सारे सुफेद हैं। और क्यों न सुफेद हों? सुफेद भेड़ों का मालिक जो ठहरा। परन्तु उसके कपोलों से लाली फूट रही है। बरफानी देशों में वह मानो विष्णु के समान क्षीरसागर में लेटा है। उसकी प्यारी स्त्री उसके पास रोटी पका रही है। उसकी दो जवान कन्यायें उसके साथ जङ्गल में भेड़ चराती घूमती हैं। अपने माता-पिता और भेड़ों को छोड़कर उन्होंने किसी और को नहीं देखा। मकान इनका बेमकान है, घर इनका बेघर है, ये लोग बेनाम और बेपता हैं।

गड़रिये का जीवन

किसी के घर कर में न घर कर बैठना इस दारे फ़ानी में।
ठिकाना बेठिकाना और मकाँ बर ला-मकाँ रखना॥

इस दिव्य परिवार को कुटी की ज़रूरत नहीं। जहाँ जाते हैं, एक घास की झोंपड़ी बना लेते हैं। दिन को सूर्य रात को तारागण इनके सखा हैं।

गड़रिये की कन्या पर्वत के शिखर के ऊपर खड़ी सूर्य का अस्त होना देख रही है। उसकी सुनहली किरणें इसके लावण्यमय मुख पर पड़ रही हैं। वह सूर्य को देख रही है और वह इसको देख रहा है।

हुए थे आँखों के कल इशारे इधर हमारे उधर तुम्हारे।
चले थे अश्कों के क्या फ़वारे इधर हमारे उधर तुम्हारे॥

बोलता कोई भी नहीं। सूर्य उसकी युवावस्था की पवित्रता पर मुग्ध है। मानो वह आश्चर्य के अवतार सूर्य की महिमा के तूफान में पड़ी नाच रही है।

इनका जीवन बर्फ की पवित्रता से पूर्ण और बन की सुगन्धि से सुगन्धित है। इनके मुख, शरीर और अन्तःकरण सुफेद, इनकी बर्फ, पर्वत और भेड़ें सुफेद। अपनी सुफेद भेड़ों में यह परिवार शुद्ध सुफेद ईश्वर के दर्शन करता है।

जो खुदा को देखना हो तो मैं देखता हूँ तुमको।
मैं देखता हूँ तुमको जो खुदा को देखना हो॥

भेड़ों की सेवा ही इनकी पूजा है। जरा एक भेड़ बीमार हुई, सब परिवार पर विपत्ति आई। दिन रात उसके पास बैठे काट देते है। उसे अधिक पीड़ा हुई तो इन सब की आँखें शून्य आकाश मे किसी को देखने लग गईं। पता नहीं वे किसे बुलाती हैं। हाथ जोड़ने तक की इन्हें फुरसत नहीं। पर, हाँ, इन सब की आँखें किसी के आगे शब्द-रहित सङ्कल्परहित मौन प्रार्थना में खुली है। दो राते इसी तरह गुजर गईं। इनकी भेड़ अब अच्छी है। इनके घर मङ्गल हो रहा है। सारा परिवार मिलकर गा रहा है। इतने में नीले आकाश पर बादल घिर आये और झम झम बरसने लगे। मानो प्रकृति के देवता भी इनके आनन्द से आनन्दित हुए। बूढ़ा गड़रिया आनन्द-मत्त होकर नाचने लगा। वह कहता कुछ नहीं, पर किसी दैवी दृश्य को उसने अवश्य देखा है। वह फूले अङ्ग नहीं समाता, रग रग उसकी नाच रही है। पिता को ऐसा सुखी देख दोनो कन्याओं ने एक दूसरे का हाथ पकड़कर पहाड़ी राग अलापना आरम्भ कर दिया। साथ ही धम धम धम-धम नाच की उन्होंने धूम मचा दी। मेरी आँखों के सामने ब्रह्मानन्द का समाँ बाँध दिया। मेरे पास मेरा भाई खड़ा था। मैने उससे कहा—"भाई, अब मुझे भी भेड़ें ले दो।" ऐसे ही मूक जीवन से मेरा भी कल्याण होगा। विद्या को भूल जाऊँ तो अच्छा है। मेरी पुस्तकें खो जावें तो उत्तम है। ऐसा होने से कदाचित् इस वनवासी परिवार की तरह मेरे दिल के नेत्र खुल जावें और मै ईश्वरीय झलक देख सकूँ। चन्द्र और

सूर्य की विस्तृत ज्योति में जो वेदगान हो रहा है उसे इस गड़रिये की कन्याओं की तरह मैं सुन तो न सकूँ, परन्तु कदाचित् प्रत्यक्ष देख सकूँ। कहते हैं, ऋषियों ने भी, इनको देखा ही था, सुना न था। पण्डितों की ऊटपटाँग बातों से मेरा जी उकता गया है। प्रकृति की मन्द मन्द हँसी में ये अनपढ़ लोग ईश्वर के हँसते हुए ओठ देख रहे हैं। पशुओं के अज्ञान में गम्भीर ज्ञान छिपा हुआ है। इन लोगों के जीवन में अद्भुत आत्मानुभव भरा हुआ है। गड़रिये के परिवार की प्रेम-मजदूरी का मूल्य कौन दे सकता है?

मजदूर की मजदूरी

आपने चार आने पैसे मजदूर के हाथ में रखकर कहा—"यह लो दिन भर की अपनी मजदूरी।" वाह क्या दिल्लगी है! हाथ, पाँव, सिर, आँखें इत्यादि सब के सब अवयव उसने आपको अर्पण कर दिये। ये सब चीजें उसकी तो थीं ही नहीं, ये तो ईश्वरीय पदार्थ थे। जो पैसे आपने उसको दिये वे भी आपके न थे। वे तो पृथ्वी से निकली हुई धातु के टुकड़े थे; अतएव ईश्वर के निर्मित थे। मजदूरी का ऋण तो परस्पर की प्रेम-सेवा से चुकता होता है, अन्न-धन देने से नहीं। वे तो दोनों ही ईश्वर के हैं। अन्न-धन वही बनाता है जल भी वही देता है। एक जिल्दसाज ने मेरी एक पुस्तक की जिल्द बाँध दी। मैं तो इस मजदूर को कुछ भी न दे सका। परन्तु उसने मेरी उम्र भर के लिए एक विचित्र वस्तु मुझे दे डाली। जब कभी मैंने उस पुस्तक को उठाया, मेरे हाथ जिल्दसाज के हाथ पर जा पड़े। पुस्तक देखते ही मुझे जिल्दसाज याद आ जाता है। वह मेरा आमरण मित्र हो गया है, पुस्तक हाथ में आते ही मेरे अन्तःकरण में रोज भरतमिलाप का सा समाँ बँध जाता है।

गाढ़े की एक कमीज को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठकर सीती है, साथ ही साथ वह अपने दुःख पर रोती भी है—दिन को खाना न मिला।

रात को भी कुछ मयस्सर न हुआ। अब वह एक एक टाँके पर आशा करती है कि कमीज कल तैयार हो जायगी; तब कुछ तो खाने को मिलेगा। जब वह थक जाती है तब ठहर जाती है। सुई हाथ में लिये हुए है, कमीज घुटने पर बिछी हुई है, उसकी आँखों की दशा उस आकाश की जैसी है जिसमें बादल बरसकर अभी-अभी बिखर गये हैं। खुली आँखें ईश्वर के ध्यान मे लीन हो रही हैं। कुछ काल के उपरान्त 'हे राम" कहकर उसने फिर सीना शुरू कर दिया। इस माता और इस बहन की सिली हुई कमीज मेरे लिये मेरे शरीर का नहीं—मेरी आत्मा का वस्त्र है। इसका पहनना मेरी तीर्थ-यात्रा है। इस कमीज में उस विधवा के सुख दुःख, प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन रूपिणी गङ्गा की बाढ़ चली जा रही है। ऐसी मजदूरी और ऐसा काम—प्रार्थना, सन्ध्या और नमाज से क्या कम है ? शब्दों से तो प्रार्थना हुआ नहीं करती। ईश्वर तो कुछ ऐसी ही मूक प्रार्थनाएँ सुनता है और तत्काल सुनता है।

प्रेम-मजदूरी

मुझे तो मनुष्य के हाथ से बने हुए कामों में उनकी प्रेममय पवित्र आत्मा की सुगन्ध आती। राफेल आदि के चित्रित चित्रों में उनकी कला-कुशलता को देख, इतनी सदियों के बाद भी उनके अन्तःकरण के सारे भावों का अनुभव होने लगता है। केवल चित्र का ही दर्शन नहीं, किन्तु साथ ही, उसमें छिपी हुई चित्रकार की आत्मा तक के दर्शन हो जाते हैं। परन्तु यन्त्रों की सहायता से बने हुए फोटो निर्जीव से प्रतीत होते हैं। उनमें और हाथ के चित्रों में उतना ही भेद है जितना कि बस्ती और श्मशान में।

हाथ की मेहनत से चीज में जो रस भर जाता है वह भला लोहे के द्वारा बनाई हुई चीज में कहाँ। जिस आलू को मैं स्वयं बोता हूँ, मैं स्वयं पानी देता हूँ, जिसके इर्द गिर्द की घास-पात खोदकर मैं साफ करता

हूँ उस आलू में जो रस मुझे आता है वह टीन में बन्द किये हुए अचार मुरब्बे में नहीं आता। मेरा विश्वास है कि जिस चीज में मनुष्य के प्यारे हाथ लगते हैं, उसमें उसके हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्म रूप से मिल जाती है और उसमें मुर्दे को जिन्दा करने की शक्ति आ जाती है। होटल में बने हुए भोजन यहाँ नीरस होते हैं, क्योंकि वहाँ मनुष्य मशीन बना दिया जाता है। परन्तु अपनी प्रियतमा के हाथ से बने हुए रूखे सूखे भोजन में कितना रस होता है। जिस मिट्टी के घड़े को कन्धों पर उठाकर, मीलों दूर से उसमें मेरी प्रेममग्न प्रियतमा ठण्डा जल भर लाती है, उस लाल घड़े का जल जब मैं पीता हूँ तब जल क्या पीता हूँ, अपनी प्रेयसी के प्रेमामृत को पान करता हूँ। जो ऐसा प्रेम-प्याला पीता हो उसके लिये शराब क्या वस्तु है? प्रेम से जीवन सदा गद्गद रहता है। मैं अपनी प्रेयसी की ऐसी प्रेम-भरी, रस-भरी, दिल-भरी सेवा का बदला क्या कभी दे सकता हूँ?

उधर प्रभात ने अपनी सुफेद किरणों से अँधेरी रात पर सुफेदी सी छिटकाई इधर मेरी प्रेयसी, मैना अथवा कोयल की तरह अपने बिस्तर से उठी। उसने गाय का बछड़ा खोला; दूध की धारों से अपना कटोरा भर लिया। गाते-गाते अन्न को अपने हाथों से पीसकर सुफेद आटा बना लिया। इस सुफेद आटे से भरी हुई छोटी सी टोकरी सिर पर; एक हाथ में दूध से भरा हुआ लाल मिट्टी का कटोरा, दूसरे हाथ में मक्खन की हँडी। जब मेरी प्रिया घर की छत के नीचे इस तरह खड़ी होती है तब वह छत के ऊपर की श्वेत प्रभा से भी अधिक आनन्ददायक, बलदायक बुद्धिदायक जान पड़ती है। उस समय वह उस प्रभा से अधिक रसीली, अधिक रँगीली, जीती जागती, चैतन्य और आनन्दमयी प्रातःकालीन शोभा सी लगती है। मेरी प्रिया अपने हाथ से चुनी हुई लकड़ियों को अपने दिल से चुराई हुई एक चिनगारी से लाल अग्नि में बदल देती है। जब

वह आटे को छलनी से छानती है तब मुझे उसकी छलनी के नीचे एक अद्‌भुत ज्योति की लौ नजर आती है। जब वह उस अग्नि के ऊपर मेरे लिए रोटी बनाती है तब उसके चूल्हे के भीतर मुझे तो पूर्व दिशा की नभोलालिमा से भी अधिक आनन्ददायिनी लालिमा देख पड़ती है। यह रोटी नहीं, कोई अमूल्य पदार्थ है। मेरे गुरु ने इसी प्रेम से संयम करने का नाम योग रखा है। मेरा यही योग है।

मजदूरी और कला

आदमियों की तिजारत करना मूर्खों का काम है। सोने और लोहे के बदले मनुष्य को बेचना मना है। आजकल भाफ की कलों का दाम तो हजारों रुपया है, परन्तु मनुष्य कौड़ी के सौ सौ बिकते हैं। सोने और चाँदी की प्राप्ति से जीवन का आनन्द नहीं मिल सकता। सच्चा आनन्द तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जाए तो फिर स्वर्गप्राप्ति की इच्छा नहीं, मनुष्य-पूजा ही सच्ची ईश्वर-पूजा है। मन्दिर और गिरजे में क्या रखा है? ईंट, पत्थर, चूना कुछ ही कहो—आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मन्दिर, मसजिद, गिरजा और पोथी में न करेंगे। अब तो यही इरादा है कि मनुष्य की अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करेंगे। यही आर्ट है—यही धर्म है। मनुष्य के हाथ ही से ईश्वर के दर्शन करानेवाले निकलते हैं। मनुष्य और मनुष्य की मजदूरी का तिरस्कार करना नास्तिकता है। बिना काम, बिना मजदूरी, बिना हाथ के कला-कौशल के विचार और चिन्तन किस काम के! सभी देशों के इतिहासों से सिद्ध है कि निकम्मे पादड़ियों, मौलवियों, पण्डितों और साधुओं का, दान के अन्न पर पला हुआ ईश्वर-चिन्तन, अन्त में पाप, आलस्य और भ्रष्टाचार में परिवर्तित हो जाता है। जिन देशों में हाथ और मुँह पर मजदूरी की धूल नहीं पड़ने पाती वे धर्म और कलाकौशल

से कभी उन्नति नहीं कर सकते। पद्मासन निकम्मे सिद्ध हो चुके हैं। वह आसन ईश्वर-प्राप्ति करा सकते है जिनमे जोतने, बोने, काटने और मजदूरी का काम लिया जाता है। लकड़ी, ईंट और पत्थर को मूर्तिमान करनेवाले लुहार, बढ़ई, मेमार तथा किसान आदि वैसे ही पुरुष है जैसे कि कवि महात्मा और योगी आदि। उत्तम से उत्तम और नीच से नीच काम, सबके सब प्रेमशरीर के अङ्ग हैं।

निकम्मे रहकर मनुष्यों की चिन्तन-शक्ति थक गई है। बिस्तरों और आसनों पर सोते और बैठे-बैठे मन के घोड़े हार गए हैं। मानो जीवन निचुड़ चुका है। स्वप्न पुराने हो चुके हैं। आजकल की कविता में नयापन नहीं। उसमें पुराने जमाने की कविता की पुनरावृत्ति मात्र है। इस नकल में असल की पवित्रता और कुँवारेपन का अभाव है। अब तो एक नये प्रकार का कला-कौशल-पूर्ण सङ्गीत साहित्य संसार में प्रचलित होनेवाला है। यदि वह न प्रचलित हुआ तो मशीनों के पहियों के नीचे दबकर हम मरा समझिए। यह नया साहित्य मजदूरों के हृदय से निकलेगा। उन मजदूरों के कंठ से वह नई कविता निकलेगी जो अपना जीवन आनन्द के साथ खेत की मेड़ों का, कपड़े के तागों का, जूते के टाँकों का, लकड़ी की रगों का, पत्थर की नसों का भेदभाव दूर करेंगे। हाथ में कुल्हाड़ी, सिर पर टोकरी, नङ्गे सिर और नङ्गे पाँव, धूल से लिपटे और कीचड़ से रँगे हुए ये बेजबान कवि जब जङ्गल में लकड़ी काटेंगे तब लकड़ी काटने का शब्द इनके असभ्य स्वरों से मिश्रित होकर वायु-यान पर चढ़ दशों दिशाओं में ऐसा अद्भुत गान करेगा कि भविष्यत् के कलावन्तों के लिए वही ध्रुपद और मलार का काम देगा। चरखा कातनेवाली स्त्रियों के गीत संसार के सभी देशों के कौमी गीत होंगे। मजदूरों की मजदूरी ही यथार्थ पूजा होगी। कलारूपी धर्म की तभी वृद्धि होगी। तभी नये कवि पैदा होंगे, तभी नये औलियों का उद्भव होगा। परन्तु ये सब के सब मजदूरी के

दूध से पलेंगे। धर्म, योग, शुद्धाचरण, सभ्यता और कविता आदि के फूल इन्हीं मजदूर-ऋषियों के उद्यान में प्रफुल्लित होंगे।

मजदूरी और फकीरी

मजदूरी और फकीरी का महत्व थोड़ा नहीं। मजदूरी और फकीरी मनुष्य के विकास के लिये परमावश्यक हैं। बिना मजदूरी किये फकीरी का उच्च भाव शिथिल हो जाता है; फकीरी भी अपने आसन से गिर जाती है; बुद्धि बासी पड़ जाती है। बासी चीजें अच्छी नहीं होतीं। कितने ही, उम्र भर बासी बुद्धि और बासी फकीरी में मग्न रहते हैं; परन्तु इस तरह मग्न होना किस काम का? हवा चल रही है; जल बह रहा है, बादल बरस रहा है; पक्षी नहा रहे हैं, फूल खिल रहा है; घास नई, पेड़ नये, पत्ते नये—मनुष्य की बुद्धि और फकीरी ही बासी! ऐसा दृश्य तभी तक रहता है जब तक बिस्तर पर पड़े-पड़े मनुष्य प्रभात का आलस्य सुख मनाता है। बिस्तर से उठकर जरा बाग की सैर करो, फूलों की सुगन्ध लो, ठण्डी वायु में भ्रमण करो, वृक्षों के कोमल पल्लवों का नृत्य देखो तो पता लगे कि प्रभात-समय जागना बुद्धि और अन्तःकरण को तरो ताजा करना है, और बिस्तर पर पड़े रहना उन्हें बासी कर देना। निकम्मे बैठे हुए चिन्तन करते रहना, अथवा बिना काम किये शुद्ध विचार का दावा करना, मानो सोते सोते खर्राटे मारना है। जब तक जीवन के अरण्य में पादड़ी, मौलवी, पण्डित और साधु, संन्यासी हल, कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे तब तक उनका आलस्य जाने का नहीं, तब तक उनका मन और उनकी बुद्धि, अनन्त काल बीत जाने तक, मलिन मानसिक जुआ खेलती ही रहेगी। उनका चिन्तन बासी, उनका ध्यान बासी, उनकी पुस्तकें बासी, उनके लेख बासी, उनका विश्वास बासी और उनका खुदा भी बासी हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस साल के गुलाब के फूल भी वैसे ही हैं जैसे पिछले साल के थे। परन्तु इस साल

सारे ताजे हैं। इनकी लाली नई है, इनकी सुगन्ध भी इन्हीं की अपनी है। जीवन के नियम नहीं पलटते; वे सदा एक ही से रहते हैं। परन्तु मजदूरी करने से मनुष्य को एक नया और ताजा खुदा नजर आने लगता है।

गेरुये वस्त्रों की पूजा क्यों करते हो ? गिरजे की घण्टी क्यों सुनते हो ? रविवार क्यों मानते हो ? पाँच वक्त की नमाज क्यों पढ़ते हो ? त्रिकाल संध्या क्यों करते ? मजदूर के अनाथ नयन, अनाथ आत्मा और अनाश्रित जीवन की बोली सीखो। फिर देखोगे कि तुम्हारा यही साधारण जीवन ईश्वरीय भजन हो गया।

मजदूरी तो मनुष्य के समष्टि-रूप का व्यष्टि-रूप परिणाम है, आत्मा रूपी धातु के गढ़े हुए सिक्के का नकदी बनाना है, जो मनुष्यों की आत्माओं को खरीदने के वास्ते दिया जाता है। सच्ची मित्रता ही तो सेवा है। उसमें मनुष्यों के हृदय पर सच्चा राज्य हो सकता है। जाति-पाँति, रूप-रङ्ग और नाम-धाम तथा बाप-दादे का नाम पूछे बिना ही अपने आपको किसी के हवाले कर देना प्रेम-धर्म का तत्व है। जिस समाज में इस तरह के प्रेम-धर्म का राज्य होता है उसका हर कोई किसी को बिना उसका नाम धाम पूछे ही पहचानता है, क्योंकि पूछनेवाले का कुल और उसकी जात वहाँ वही होती है जो उसकी, जिससे कि वह मिलता है। वहाँ सब लोग एक ही माता-पिता से पैदा हुए भाई-बहन हैं। अपने ही भाई-बहनों के माता-पिता का नाम पूछना क्या पागलपन से कम समझा जा सकता है ? यह सारा संसार एक कुटुंबवत् है। लंगड़े-लूले, अंधे और बहरे उसी मौरूसी घर की छत के नीचे रहते हैं जिसकी छत के नीचे बलवान्, नीरोग और रूपवान्, कुटुम्बी रहते हैं मूढ़ों और पशुओं का पालन-पोषण बुद्धिमान, सबल और नीरोग ही तो करेंगे। आनन्द और प्रेम की राजधानी का सिंहासन सदा से प्रेम और मजदूरी के ही कन्धों पर रहता आया है। कामना सहित होकर भी मजदूरी निष्काम होती है; क्योंकि मजदूरी का

बदला ही नहीं। निष्काम कर्म करने के लिये जो उपदेश दिये जाते हैं उनमें अभावशील वस्तु सभावपूर्ण मान ली जाती है। पृथ्वी अपने ही अक्ष पर दिन रात घूमती है। यह पृथ्वी का स्वार्थ कहा जा सकता है परन्तु उसका यह घूमना सूर्य्य के इर्द गिर्द घूमना तो है और सूर्य्य के इर्द गिर्द घूमना सूर्य्यमंडल के साथ आकाश में एक सीधी लकीर पर चलना है। अन्त में, इसको गोल चक्कर खाना सदा ही सीधा चलना है। इसमें स्वार्थ का अभाव है। इसी तरह मनुष्य की विविध कामनायें उसके जीवन को मानों उसके स्वार्थरूपी धुरे पर चक्कर देती है। परन्तु उसका जीवन अपना तो है ही नहीं, वह तो किसी आध्यात्मिक सूर्य्यमण्डल के साथ की चाल है और अन्ततः यह चाल जीवन का परमार्थ-रूप है। स्वार्थ का यहाँ भी अभाव है, जब स्वार्थ कोई वस्तु ही नहीं तब निष्काम और कामनापूर्ण कर्म करना दोनों ही एक बात हुई। इसलिए मजदूरी और फ़कीरी का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

मजदूरी करना जीवनयात्रा का आध्यात्मिक नियम है। जोन ऑव आर्क (Joan cf Arc) की फकीरी और भेड़ें चराना, टाल्सटाय का त्याग और जूते गाँठना, उमर खैयाम का प्रसन्नतापूर्वक तम्बू सीते फिरना, खलीफा उमर का अपने रङ्ग महलों में चटाई आदि बुनना, ब्रह्मज्ञानी कबीर और रैदास का शूद्र होना, गुरु नानक और भगवान् श्रीकृष्ण का मूक पशुओं को लाठी लेकर हाँकना—सच्ची फकीरी का अनमोल भूषण है।

एक दिन गुरु नानक यात्रा करते करते भाई लालो नाम के एक बढ़ई के घर ठहरे। उस गाँव का भागो नामक रईस बड़ा मालदार था। उस दिन भागो के घर ब्रह्मभोज था। दूर दूर से साधु आये हुए थे गुरु नानक का आगमन सुनकर भागो ने उन्हें भी निमन्त्रण भेजा। गुरु ने भागो का अन्न खाने से इनकार कर दिया। इस बात पर भागो को बड़ा क्रोध आया। उसने गुरु नानक को बलपूर्वक पकड़ मँगाया और

उसने पूछा—आप मेरे यहाँ का अन्न क्यों नहीं ग्रहण करते ? गुरुदेव ने उत्तर दिया—भागो, अपने घर का हलवा-पूरी ले आओ तो हम इसका कारण बतला दें। वह हलवा-पूरी लाया तो गुरु नानक ने लालो के घर से भी उसके मोटे अन्न की रोटी मँगवाई। भागो की हलवा-पूरी उन्होंने एक हाथ में और भाई लालो की मोटी रोटी दूसरे हाथ में लेकर दोनों को जो दबाया तो एक से लोहू टपका और दूसरी से दूध की धारा निकली। बाबा नानक का यही उपदेश हुआ। जो धारा भाई लालो की मोटी रोटी से निकली थी वही समाज का पालन करनेवाली दूध की धारा है यही धारा शिवजी की जटा से और यही धारा मजदूरों की उँगलियों से निकलती है।

समाज का पालन करनेवाली दूध की धारा

मजदूरी करने से हृदय पवित्र होता है; सङ्कल्प दिव्य लोकान्तर में विचरते हैं। हाथ की मजदूरी ही से सच्चे ऐश्वर्य्य की उन्नति होती है। जापान में मैंने कन्याओं और स्त्रियों को ऐसी कलावती देखा है कि वे रेशम के छोटे छोटे टुकड़ों को अपनी दस्तकारी की बदौलत हजारों की कीमत का बना देती हैं, नाना प्रकार के प्राकृतिक पदार्थों और दृश्यों को अपनी सुई से कपड़े के ऊपर अङ्कित कर देती हैं। जापान-निवासी कागज, लकड़ी और पत्थर की बड़ी अच्छी मूर्तियाँ बनाते हैं। करोड़ों रुपये के हाथ के बने हुए जापानी खिलौने विदेशों में बिकते हैं। हाथ की बनी हुई जापानी चीजें मशीन से बनी हुई चीजों को मात करती है। संसार के सब बाजारों में उनकी बड़ी माँग रहती है। पश्चिमी देशों के लोग हाथ की बनी हुई जापान की अद्‌भुत वस्तुओं पर जान देते हैं। एक जापानी तत्त्वज्ञानी का कथन है कि हमारी दस करोड़ उँगलियाँ सारे काम करती हैं। इन उँगलियों ही के बल से, सम्भव है हम जगत् को जीत लें। ("We shall beat the world with the tips

of our fingers") जब तक धन और ऐश्वर्य की जन्मदात्री हाथ की कारीगरी की उन्नति नहीं होती तब तक भारतवर्ष ही की क्या, किसी भी देश या जाति की दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। यदि भारत की तीस करोड़ नर-नारियों की उँगलियाँ मिलकर कारीगरी के काम करने लगें तो उनकी मजदूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे।

अन्न पैदा करना, तथा हाथ की कारीगरी और मिहनत से जड़ पदार्थों को चैतन्य-चिह्न से सुसज्जित करना, क्षुद्र पदार्थों को अमूल्य पदार्थों में बदल देना इत्यादि कौशल ब्रह्मरूप होकर धन और ऐश्वर्य की सृष्टि करते है। कविता, फकीरी और साधुता के ये दिव्य कला कौशल जीते-जागते और हिलते डुलते प्रतिरूप है। इनकी कृपा से मनुष्य-जाति का कल्याण होता है। ये उस देश में कभी निवास नहीं करते जहाँ मजदूर और मजदूर की मजदूरी का सत्कार नहीं होता; जहाँ शूद्र की पूजा नहीं होती। हाथ से काम करनेवालों से प्रेम रखने और उनकी आत्मा का सत्कार करने से साधारण मजदूरी सुन्दरता का अनुभव करानेवाले कला-कौशल, अर्थात् कारीगरी, का रूप हो जाती है। इस देश में जब मजदूरी का आदर होता था तब इसी आकाश के नीचे बैठे हुए मजदूरों के हाथों ने भगवान् बुद्ध के निर्वाण-सुख को पत्थर पर इस तरह जड़ा था कि इतना काल बीत जाने पर, पत्थर की मूर्ति के ही दर्शन मे ऐसी शान्ति प्राप्त होती है जैसी कि स्वयं भगवान् बुद्ध के दर्शन से होती है। मुँह हाथ, पाँव इत्यादि का गढ़ देना साधारण मजदूरी है, परन्तु मन के गुप्त भावों और अंतःकरण की कोमलता तथा जीवन की सभ्यता को प्रत्यक्ष प्रकट कर देना प्रेम-मजदूरी है। शिवजी के ताण्डव नृत्य को और पार्वतीजी के मुख की शोभा को पत्थरों की सहायता से वर्णन करना जड़ को चैतन्य बना देना है। इस देश में कारीगरी का बहुत दिनों से अभाव है। महमूद

न ने सोमनाथ के मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ तोड़ी थीं उससे उसकी कुछ भी वीरता सिद्ध नहीं होती। उन मूर्तियों को तो हर कोई तोड़ सकता था। उसकी वीरता की प्रशंसा तब होती जब वह यूनान की प्रेम-मजदूरी, अर्थात् वहाँवालों के हाथ की अद्वितीय कारीगरी प्रकट करनेवाली मूर्तियाँ तोड़ने का साहस कर सकता। वहाँ की मूर्तियाँ तो बोल रही हैं—वे जीती जागती हैं, मुर्दा नहीं। इस समय के देवस्थानों में स्थापित मूर्तियाँ देखकर अपने देश की आध्यात्मिक दुर्दशा पर लज्जा आती है। उनसे तो यदि अनगढ़ पत्थर रख दिए जाते तो अधिक शोभा पाते। जब हमारे यहाँ के मजदूर, चित्रकार तथा लकड़ी और पत्थर पर काम करनेवाले भूखों मरते हैं तब हमारे मन्दिरों की मूर्तियाँ कैसे सुन्दर हो सकती हैं? ऐसे कारीगर तो यहाँ शूद्र के नाम से पुकारे जाते हैं। याद रखिए, बिना शूद्र-पूजा के मूर्ति-पूजा किंवा कृष्ण और शालग्राम की पूजा होना असम्भव है। सच तो यह है कि हमारे धर्म-कर्म बासी ब्राह्मणत्व से छिछोरेपन से दरिद्रता को प्राप्त हो रहे हैं। यही कारण है जो आज हम जातीय दरिद्रता से पीड़ित हैं।

पश्चिमी सभ्यता मुख मोड़ रही है। वह एक नया आदर्श देख रही है। अब उसकी चाल बदलने लगी है। वह कलों की पूजा को छोड़कर मनुष्यों की पूजा को अपना आदर्श बना रही है। इस आदर्श के दर्शानेवाले देवता रस्किन और टाल्सटाय आदि हैं। पाश्चात्य देशों में नया प्रभात होनेवाला है। वहाँ के गम्भीर विचारवाले लोग इस प्रभात का स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए हैं। प्रभात होने के पूर्व ही उसका अनुभव कर लेनेवाले पक्षियों की तरह इन महात्माओं को इस

पश्चिम सभ्यता का एक नया आदर्श

नये प्रभात का पूर्व ज्ञान हुआ है। और, हो क्यों न? इंजनों के पहिये के नीचे दबकर वहाँवालों के भाई बहन—नहीं नहीं, उनकी सारी जाति

पिस गई; उनके जीवन के धुरे टूट गये, उनका समस्त धन घरों से निकलकर एक ही दो स्थानों में एकत्र हो गया। साधारण लोग मर रहे हैं, मजदूरों के हाथ-पाँव फट रहे है, लहू चल रहा है! सरदी से ठिठुर रहे हैं। एक तरफ दरिद्रता का अखण्ड राज्य है, दूसरी तरफ अमीरी का चरम दृश्य। परन्तु अमीरी भी मानसिक दुःखों से विमर्दित है। मशीनें बनाई तो गई थीं मनुष्यों का पेट भरने के लिए—मजदूरों को सुख देने के लिए—परन्तु वे काली काली मशीनें ही काली बनकर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं। प्रभात होने पर ये काली-काली बलायें दूर होंगी। मनुष्य के सौभाग्य का सूर्य्योदय होगा।

शोक का विषय है कि हमारे और अन्य पूर्वी देशों में लोगों को मजदूरी से तो लेशमात्र भी प्रेम नही, पर वे तैयारी कर रहे हैं पूर्वोक्त काली मशीनों का आलिङ्गन करने की। पश्चिमवालों के तो ये गले पड़ी हुई बहती नदी की काली कमली हो रही है। वे छोड़ना चाहते हैं, परन्तु काली कमली उन्हें नही छोड़ती। देखेंगे, पूर्ववाले इस कमली को छाती से लगाकर कितना आनन्द अनुभव करते है। यदि हममे से हर आदमी अपनी दस उँगलियों की सहायता से साहसपूर्वक अच्छी तरह काम करे तो हम मशीनों की कृपा से बढ़े हुए परिश्रमवालों को, वाणिज्य के जातीय संग्राम में सहज ही पछाड़ सकते है। सूर्य्य तो सदा पूर्व ही से पश्चिम की ओर जाता है। पर आओ पश्चिम में आनेवाली सभ्यता के नये प्रभात को हम पूर्व से भेजें।

इंजनों की वह मजदूरी किस काम की जो बच्चों, स्त्रियों और कारीगरों को ही भूखा नङ्गा रखती है, और केवल सोने, चाँदी, लोहे आदि धातुओं का ही पालन करती है। पश्चिम को विदित हो चुका है कि इनसे मनुष्य का दुःख दिन पर दिन बढ़ता है। भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मजदूरी के बदले कलों से काम लेना काल का डङ्का बजाना होगा। दरिद्र प्रजा और भी दरिद्र होकर मर जायगी। चेतन

में चेतन की वृद्धि होती है। मनुष्य को तो मनुष्य ही सुख दे सकता है परस्पर की निष्कपट सेवा ही से मनुष्य जाति का कल्याण हो सकता है धन एकत्र करना तो मनुष्य-जाति के आनन्द-मङ्गल का एक साधारण सा और महा तुच्छ उपाय है। धन की पूजा करना नास्तिकता है; ईश्वर को भूल जाना है; अपने भाई-बहनों तथा मानसिक सुख और कल्याण के देनेवालों का मारकर अपने सुख के लिये शारीरिक राज्य की इच्छा करना है, जिस डाल पर बैठे हैं उसी डाल को स्वयं ही कुल्हाड़ी से काटना है। अपने प्रिय जनों से रहित राज्य किस काम का? प्यारी मनुष्य-जाति का सुख ही जगत के मङ्गल का मूल साधन है। बिना उसके सुख के अन्य सारे उपाय निष्फल हैं। धन की पूजा से ऐश्वर्य, तेज, बल और पराक्रम नहीं प्राप्त होने का। चैतन्य आत्मा की पूजा से ही ये पदार्थ प्राप्त होते हैं। चैतन्य-पूजा ही से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। समाज का पालन करनेवाली दूध की धारा जब मनुष्य के प्रेममय हृदय, निष्कपट मन और मित्रतापूर्ण नेत्रों से निकलकर बहती है तब वही जगत् में सुख के खेतों को हरा-भरा और प्रफुल्लित करती है और वही उनमें फल भी लगाती है। आओ, यदि हो सके तो, टोकरी उठाकर कुदाली हाथ में लें, मिट्टी खोदें और अपने हाथ से उसके प्याले बनावें। फिर एक एक प्याला घर घर में, कुटिया कुटिया में रख आवें और सब लोग उसी में मजदूरी का प्रेमामृत पान करें।

है रीत आशकों की तन मन निसार करना।
रोना सितम उठाना और उनको प्यार करना॥

प्रकाशन-काल—भाद्र संवत् १९६९ वि॰
सितम्बर सन् १९१२ ई॰

अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट ह्विटमैन—

अमेरिका के लम्बे लम्बे हरे देवदारों के घने वन में वह कौन फिर रहा है? कभी यहाँ टलहना है कभी वहाँ गाता है।

एक लम्बा, ऊँचा, वृद्ध युवक, मिट्टी-गारे से लिप्त, मोटे वस्त्र का पतलून और कोट पहने, नङ्गे सिर, नङ्गे पाँव और नङ्गे ही दिल अपनी तिनकों की टोपी मस्ती में उछालता, झूमता जा रहा है। मौज आती है तो घास पर लेट जाता है। कभी नाचता, कभी चीखता और कभी भागता है। मार्ग में पशुओं को हरे तृण का भोज उड़ाते देख आनन्द में मग्न हो जाता है। आकाश-गामी पक्षियों के उड़ान को देख हर्ष में प्रफुल्लित हो जाता है। जब कभी उसे परोपकार की सूझती है तब वह गोल-गोल श्वेत शिवशङ्करों को उठा-उठा कर नदी की तरङ्गों पर बरसाता है। आज इस वृक्ष के नीचे विश्राम करता है, कल उसके नीचे बैठता है। जीवन के अरण्य में वह धूप और छाँह की तरह विचरता चला जाता है। कभी चलते चलते अकस्मात् ठहर जाता है, मानो कोई बात याद आ गई। बार-बार गर्दन फेर-फेर और नेत्र उठा-उठा कर वह सूर्य्य को ताकता है। सूर्य्य की सुनहली सोहनी रोशनी पर वह मरता है। समीर की मन्द-मन्द गति के साथ वह नृत्य करता है, मानो सहस्त्रों वीणायें और सितार उसको पवन के प्रवाह में सुनाई देते है। इस प्राकृतिक राग की आँधी के सामने मानुषिक राग, दिनकर के प्रकाश में टिमटिमाती हुई दीप-शिखा के समान तेजोहीन प्रतीत होते है। उसके भीतर बाहर कुछ ऐसी असाधारण मधुरता भरी है कि चञ्चरीक के समूह के समूह उसके साथ साथ लगे फिरते है। उसके हृदय का सहस्त्रदल ब्रह्म-कमल ऐसा खिला है कि सूर्य और चन्द्र भ्रमरवत्

इस विकसित कमल के मधु का स्वाद लेने को जाते हैं। बारी बारी से वे उसमें मस्त होकर बन्द होते है और प्रकाश पाकर पुनः बाहर आते हैं।

इस सुन्दर धवल केशधारी वृद्ध के वेश में कहीं न्यागरा की दूध धारा तो नहीं फिर रही है ? यह मस्त बनदेव कौन है। चलता इस लटक से है मानो यही इस वन का राजा या गन्धर्व है। पत्ता पत्ता, कली कली, नली नली, डाली-डाली तने तने को यह ऐसी रहस्य-पूर्ण दृष्टि से देखता है मानो सब इसी के दिलदार और यार है। सामने से वे दो कृषक-महिलायें दूध की ठिलियां उठाये गाती हुई आती हैं। क्या ही अलौकिक दृश्य है। औरों को तो ये दो अबलायें अस्थि और मांस की पुतलियां ही प्रतीत होती है, परन्तु हमारे मस्तराम की आश्चर्य भरी आँखों को वे केवल बाँस की पोरियाँ ही दीखती है। उसकी निगूढ़ दृष्टि उनसे लड़ी। वे दोनों इस वृद्ध-युवक को अवारा समझ कुछ खफा हुईं, कुछ शरमाईं और कुछ मुस्कराईं।। उसने उनके मतलब को जान लिया। वह हँसा, खिलखिलाया और सलाम किया। नयनों से कुछ इशारे किये; आँसू बहाये। किसी की प्रशंसा की, कोई याद आया, किसी से हाथ मिलाया और उसे दिल दे दिया। यह दृश्य हमारे मस्त कवि का एक काव्य हुआ।

वे देखो खोखले वृक्ष, वेश बदल कर और वृद्ध स्त्रियों का रूप बनाकर, सामने नजर आये। वे दोनों वृद्धायें हाथ में हाथ मिलाये कुछ अलापती जा रही हैं। उसने जिन दो पूर्व युवतियों, हुस्न की परियों, विकसित कलियों, को देखकर अपना काव्य-प्रवाह बहाया था उसी पवित्र काव्य-गङ्गा को वृक्षों के चरणों में भी छोड़ दिया। वह सौन्दर्य का कितना बड़ा पुजारी है। वह हर वस्तु में सुन्दरता ही सुन्दरता देखता है। क्यों नहीं, तत्त्ववित् है न। उसके अनुभव में आया है कि उसकी एकमात्र प्यारी नाना रूपों से प्रत्यक्ष हुई है। प्रत्येक वस्तु सुन्दर है— क्या बाँस की लम्बी लम्बी पोरियाँ और क्या वट के खोखले तने। या

तो संसार की दृष्टि ही अपूर्ण है, या मेरी वह दृष्टि भरमाती है। उनमें अन्तर अवश्य है। जो आँख हर आँख में अपने ही प्यारे को देखती है वह भला तुम्हारी कला के पैमानों के कारागार में कैसे बन्द हो सकती है। बस सौन्दर्य का सच्चा पुजारी यही है। यह सब को सदा सही सुनाता है—"तुम भले, तुम भले"।

अमेरिका के वन में नहीं, जीवन के अरण्य में यह कौन जा रहा है? यह प्रकृति का बंभोला कौन? यह वन का शाहदौला है कौन? यह इतना शरीफ अमीर होकर ऐसा रिन्द फकीर है कौन? अमेरिका वही मूर्ख [बहिर्मुख], तत्त्वहीन, मशीन-रूपी नरक में यह जीता जागता ब्रह्मज्ञानरूपी स्वर्ग कौन है? इसकी उपस्थितिमात्रसे मनुष्य की आभ्यन्तरिक अवस्था बदल जाती है। अमेरिका की बहिर्मुख सभ्यता को लात मार कर, बिरादरी और बादशाह से बागी होकर, कालीनों को जला कर, महलों में आग लगा कर यह कौन जाड़ा मना रहा है? प्रभात की फेरी वाला, जङ्गल का जोगी, अमेरिका का स्वतंत्र और मस्त फकीर वाल्ट ह्विटमैन अपनी काव्यरचना करता हुआ जा रहा है।

वह कोमल और ऊँचे, लम्बे और गहरे, स्वरों से एक सँदेसा देता जा रहा है। सभ्यता के नगरों से यह जोगी जितना ही दूर होता जाता है उसका स्वर उतना ही गम्भीर होता है।

वास्तव में मनुष्य स्वतन्त्रता प्रिय है। किसी प्रकार के दासपन को वह नहीं सह सकता। आजकल अमेरिका में लोग अमीरी से तङ्ग आ गये है। उसकी हँसी एक प्रकार की मिस्सी है। जो किसी को मुख दिखाता हुआ झट मल ली। वहाँ घर और बच्चों को कफन और कब्र बनाकर मनुष्य-जीवन का प्रवाह दबाया जाता है। चमकता हुआ कलदार ही इस बाह्य जीवन को स्थिर रखने का वहाँ खुदा है। जैसे भारतवासी फोटो उतरवाते समय ओठों और मूछों के कोण और कोटों के किनारे सँभालते है उसी तरह आधुनिक

कलदार सभ्यता (Dollar-Civilisation) में जीते जागते मनुष्यों को सुन्दर फोटो रूप बनकर अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनके आचरण हृदय-प्रेम की ताल से तुले नहीं होते, वे कृत्रिम होते हैं। वहां अमरीका के नृसिंह भगवान् ह्विटमैन ने अपने उच्चनाद से हिन्दुओं की ब्रह्म विद्या और ईरान की सूफी विद्या को एक ही साथ घोषित किया है। वाल्ट ह्विटमैन के मत में वह मनुष्य ही क्या जो ब्रह्मनिष्ठ नहीं। वह एक मनुष्य के जीवन में मनुष्यमात्र का जीवन और मनुष्य मात्र के जीवन में एक मनुष्य का जीवन देखता है। उसके काव्य का प्रवाह आकाशवत् सार्वभौम है। जैसे आकाश समस्त नक्षत्र आदि को उठाये हुए है उसी तरह उसका काव्य सब चर और अचर, नर और नारी को चमकते दमकते तारों की तरह, अपने में लपेटे हुए है। वह सब के मन की कहता है और सब उसको अपने मन की बात बताते हैं। गरीबों को अमीर और अमीरों को गरीब करनेवाला कवि यही है। अपने आनन्द की मस्ती में उसे काव्य की तुकबन्दी भी बन्धन प्रतीत होती है। वह प्रत्येक दोहे-चौपाई को पिङ्गल के नियम की तराजू में नहीं, किन्तु अपने हृदयानन्द के ताल में तौलता है जो लोग मिश्र के पिरामिड को उत्तम कला कौशल का नमूना मानते हैं उनकी सुन्दरता देखने की दृष्टि परदानशीनों की सी है। प्रकृति के बाह्य अनियमित दृश्य इन परदानशीनों के नियमित दृश्यों से कहीं बढ़ कर सुन्दर हैं। जो भेद समुद्र की छाती के उभार के प्रेमियों और एक युवती के वक्षस्थल के उभार के प्रेमियों में है, वही भेद ह्विटमैन के सदृश स्वतंत्र काव्यप्रेमियों और तुकबन्दी के प्रेमियों में है। बाग बनाना तो मानुषी कला है, और जङ्गल बनाना दिव्य कला है, चित्र बनाना तो जीतों को मुर्दा बनाना है और मुर्दा प्रकृति को जीवित संसार बना देना ब्रह्मकला है। और कवि तो केवल चित्र बनाते हैं, परन्तु यह कवि जीते जागते प्राणियों को अपने काव्य में भरता है। नीचे हम वाल्ट ह्विटमैन की पोयम्स

आव् जॉय (Poems of Joy) नामक कविता के कुछ खण्डों का तरजुमा, नमूने के तौर पर देते हैं :—

ओ कैसे रचूँ आनन्द भरी, रसभरी, दिल भरी कविता—रागभरी, पुंस्त्व भरी, स्त्रीत्व भरी, बालकत्व भरी, संसार भरी, अन्न भरी, फल भरी, पुष्प भरी ॥१॥ ओः ! पशुओं की ध्वनि लाऊँ,

आनन्द-काव्य मछलियों की फुर्ती, और उनके तुले हुए तैरते शरीरों को लाऊँ। चारों ओर हो विशाल समुद्र का जल, खुले समुद्र पर हों खुले बादबाँ, और चले हमारी नैया ॥२॥ ओः ! आत्मानन्द का दरिया टूटा, पिंजड़े टूटे, दीवारें टूटीं, घर बह गये और शहर बह गये। इस एक छोटी पृथ्वी से क्या होता है ? लाओ, दे दो सब नक्षत्र मुझे, सब सूर्य मुझे, और सब काल मुझे ॥३॥

....

ओः ! इस अनादि भौतिक पीड़ा को—इस प्रेमदर्द को—दरसाऊँ कैसे अपनी कविता में। कैसे बहाऊँ उस आत्मगङ्गा के नीर को; कैसे बहाऊँ प्रेमाश्रुओं को अपनी कविता में ॥४॥ जो पृथ्वी है सो हम हैं; जो तारे हैं सो हम हैं; ओः हो ! कितनी देर हमने उल्लुओं के स्वर्ग में काट दी। हम शिला हैं; पृथ्वी में धँसे हैं; हम खुले मैदान हैं; साथ-साथ पड़े हैं; हम हैं दो समुद्र, जो आन मिले हैं। पुरुष का शरीर पवित्र है, स्त्री का शरीर पवित्र है, फूलों का शरीर पवित्र है, वायु का शरीर पवित्र है, जल पवित्र है, धरती पवित्र है, आकाश पवित्र है, गोबर और तृण की झोंपड़ी पवित्र है, प्रेम पवित्र है, सेवा पवित्र है, अर्पण पवित्र है। लो सब अपने आपको तुम्हारे हवाले करता हूँ। कोई भी हो, तुम सारी दुनिया के सामने मेरे हो रहे।

प्रकाशन काल—वैशाख संवत् १९७० वि०

मई सन् १९१३ ई०

परिशिष्ट—

शब्दार्थ

सच्ची वीरता

सत्वगुण—प्रकृति के तीन गुणों में प्रधान गुण। हरा की कन्दरा—अरब देश में हिरा पहाड़ की गुफा, जिसमें मुहम्मद साहब ने एकान्त चिन्तन किया था। पैग़ाम—सन्देश। सारंगी—एक बाजा। अल्लाहू अकबर—ईश्वर महान् है। अगम्य—पहुँच के बाहर, कठिन। जर्क-बर्क—भड़क-भड़क वाला, चमकीला। कुर्बान—निछावर। पिंडोपजीवी—दूसरे के दिये हुए टुकड़े से जीवन-निर्वाह करनेवाला। जरी—सोने के तारों आदि से काम किया हुआ कपड़ा। शाहंशाह-ज़माना—सम्राट का प्रताप। जार्ज—इङ्गलैण्ड के राजाओं की उपाधि। अमरसन—(एमर्सन) अमेरिका का प्रसिद्ध विचारक। निर्लिप्त—जो किसी से कुछ सम्बन्ध न रखे, आसक्ति-रहित। मन्सूर—जिसे ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो। यहाँ पर एक प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त, जो फारस में नवीं शताब्दी में हुयेथे। काफ़िर—मुसलमानों के अनुसार उनसे भिन्नधर्म मानने वाला, विधर्मी, दुष्ट। कलाम—वाक्य। अनलहक—मैं खुदा हूँ। भगवान् शङ्कर—अद्वैत दर्शन के प्रतिष्ठापक शंकराचार्य। कापालिक—मध्य युग के शिव के उपासक वाममार्गी, जो मनुष्य की खोपड़ी में खाते-पीते हैं। बगोले—भँवर की तरह चक्करदार घूमते हुए हवा के बवन्डर। हरकत—चेष्टा, गति। कुदरत—प्रकृति। पोप—ईसाई धर्म के रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के धर्माचार्य। गुस्ताखी—ढिठाई, अपराध। ब्रह्मवाक्य—ईश्वर की वाणी। पाबन्दी—आदेश का पालन करना। अटक—पंजाब की एक नदी।

शिकस्त—पराजय। एल्प्स—यूरोप का एक पहाड़। कारनामें—युद्ध सम्बन्धी कार्य। इलहाम—ईश्वरी प्रेरणा। जलाल—प्रभाव, आतंक। रौनक—चमक-दमक, सुहावन। कमाल—अनोखा काम। लिबास—वेष। क्रूसेड्ज—ईसाइयों का धर्मयुद्ध। आरियो—रुदन करना। नैटिंगेल बुलबुल। परन्द—पक्षी। देदीप्यमान—चमकता हुआ। गारों—गड्ढों। ड्राइङ्ग हाल के वीर—तसवीर में चित्रित वीर-चित्रों के समान केवल दिखावे के वीर। परले दरजे—अत्यधिक। मरकज—केन्द्र। पालिसी—नीति। मरियम—ईसा की माता। शाहंशाहइकीकी—बादशाह का सगा-सम्बन्धी। सलीव - सूली का तख्ता। जायन—विराट्। मखौल—मजाक खेल। गर्क—डूबा हुआ, मग्न। कारलायल—अंग्रेजी का प्रसिद्ध लेखक। फिजिक्स—भौतिक विज्ञान। नेपोलियन—फ्रांस का वीर सम्राट्। इत्तिफाक—संयोग। बगावत—विद्रोह। सब्ज बर्गों—हरे पत्तों, हरियाली (आनन्द) से भरा वातावरण। जार—रूस का बादशाह। हीरो—नायक। नफरत—घृणा। ह्रेतदृष्टि—हम दूसरे, तुम दूसरे की भावना। कूक—गान। मलबा—(Stuff) सत्व, तैयारी।

कन्या-दान

बपतिस्मा—ईसाई धर्म में दीक्षित होने का संस्कार। मसीहा—मरे को जीवित करने की शक्ति रखनेवाला। मर्दुमे—मनुष्य। दीदा—दृष्टि-पंज-ए-मिजगा—आँखों की झलकें। हाथ खाली मर्दुमे०—आँखों के लिए दर्शनीयमूर्ति मनुष्यों से भला खाली हाथ क्या मिला जाय, कम से कम आँख की बरौनियों में अश्रु की लड़ियों के रूप में मोतियों की एक माला तो अवश्य हो। समाधिस्थ—मन को ब्रह्म पर केन्द्रित कर योग की अन्तिम अवस्था में स्थिति। निर्विकल्प—वह ज्ञान जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एक रूपता का अखंड बोध हो। तिमिराच्छन्न—अंधकार से ढका हुआ। पीर—महात्मा, सिद्ध। पैगम्बर—ईश्वर का दूत। औलिया—सन्त। पतिवेदन—पति को प्राप्त करने की अनुभूति।

सोहने—मोहक। **कदूरत**—गंदापन। **इखलाकी**—शील या नीति-सम्बन्धी **मुल्की**—राज्य-सम्बन्धी। **नियामिका**—नियंत्रण करने वाली **विधायिका**—रचना करनेवाली। **गुमराह**—रास्ता भूलना। **समष्टिगत**—सामूहिक सत्ता। **रस्मोरवाज**—रीति, परिपाटी। **पतिंवरा**—पति को वरण करने वाली कन्या। **ढब**—युक्ति। **दोनोंदुनियाँ**—यह लोक और परलोक। **मुबारक**—मंगलप्रद। **बिछुड़ती दुलहन वतन से है॰**—अपने पिता के घर से पति के घर जाने के लिए जब दुलहन बिदा होने लगती है तो उस समय का वातावरण करुणा और प्रेम से भर जाता है। शरीर में रोमाञ्च हो आता है और गला रुक जाता है। उसे पुनः उस घर लौटने की कोई युक्ति नहीं है अतः शरीर रोमाञ्चित है और गला रुँध गया है। जाओ तुम्हें यह लोक और परलोक दोनों मंगल देनेवाले हों और हम लोगों के लिए हमारा दूल्हा सदा ही कुशलपूर्वक कायम रहे; पर हाँ, प्रेम का यह आखिरी दृश्य भूलना नहीं, सदा याद रखना कि प्रेम से शरीर रोमाञ्चित है और गला रुँधा हुआ है। **मखौल**—हँसी-ठट्ठा।

पवित्रता

बियाबान—उजाड़, निर्जन और निर्जल स्थान। **कंचनगंगा**—हिमालय पर्वत का एक रमणीय शिखर। **चंडूल**—एक पक्षी। **कजा**—सम्पन्न, (मृत्यु, नागा)। **था जिनकी खातिर नाच किया॰**—जिनको प्रसन्न करने के लिए यह नाच किया था, जब उनकी मूर्ति सामने आ गयी तब उस आनन्द की विह्वलता में मैं आप कहीं रह गया, नृत्य दूसरी जगह हो गया और तान कहीं की कहीं लहराने लगी। **ईद**—शुभ दिन। **मार्गशीर्ष**—अगहन का महीना। **मोतियाबिन्द**—आँख में सफेद दाग पड़ जाना जिससे दिखायी नहीं पड़ता। **बुतखाना**—मन्दिर। **पद्मासन**—योग करने का आसन विशेष। **कपोल**—मुखमंडल। **सर्वकलासंयुक्त**—सभी कलाओं को जाननेवाले। **बपतिस्म**—दीक्षा। **निर्जन्तुक**—जीवों से शून्य। **अजनबी**—परदेशी। **ब्रह्मवादिनी**—ब्रह्म का निरूपण करनेवाली।

बेयार—बिना दोस्त। **दुलदुले**—एक घोड़ी जिसे मिश्र के हाकिम ने मुहम्मदसाहब को दिया था और जिसकी नकल मुसलमान मुहर्रम के दिनों में निकालते हैं। **दीदार**—दर्शन। **बुतपरस्ती**—मूर्ति-पूजा। **खिलाफ**—विरुद्ध। **गाहेबगाहे**—कभी-कभी। **वहशियों**—जंगली जानवर, पागल। **सदा**—शब्द, ध्वनि, पुकारने की आवाज। **दुनिया की छत पर०**—दुनिया की छत पर खड़ा हूँ और तमाशा देखता हुआ खुश हूँ, कभी-कभी मस्ती में पागलों की-सी आवाज लगा देता हूँ। **पुलपिट**—गिर्जाघर में उपदेश देने-वालों का ऊँचा आसन। **निवारणार्थ**—रोकने के लिए। **संन्यासाश्रम**—त्याग और साधना का जीवन। **शङ्कर भगवान्**—आचार्य शङ्कर। **गौड़पाद**—शङ्कराचार्य के गुरु के गुरु, जिन्होंने माण्डूक्योपनिषद् पर कारिकायें लिखी है। **समष्टि**—सामूहिक रूप से। **तेजोऽसि तेजो मयि धेहि०**—हे परमेश्वर! आप तेज हैं मुझे भी तेजस्वी करें, आप पुंस्त्व हैं मुझे भी पौरुष दें। आप बल हैं मुझे भी बलवान् बनायें, आप दीप्ति (चमक) हैं मुझे भी दीप्तिमान करें, आप यज्ञ हैं मुझे भी यज्ञशील बनायें, आप शक्ति है मुझे भी शक्तिमान करें। **हबशी**—अफ्रीका की जंगली जाति। **डट कर खड़ा हूँ खाली जहान में०**—इस शून्य सृष्टि में साहस पूर्वक खड़ा हूँ और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मेरे अपने बल और हृदय में अपार भरोसा है। **अमली तौर**—कार्य रूप में कर दिखाना। **निघण्टु**—शब्द-कोष। **काफूर**—कर्पूर। **पतञ्जलि**—योग सूत्रों के रचयिता प्रसिद्ध महर्षि। **शाक्यमुनि**—गौतम बुद्ध। **सहार**—सहना, बरदास्त करना। **कैवल्य**—अपने स्वरूप में स्थिति, मोक्ष, अलिप्तभाव। **वैशेषिकवालों**—वैशेषिक दर्शन की। **विशेष**—सात पदार्थों में से एक। **निर्वाण**—परम शान्ति। **विदेह मुक्ति**—मृत्यु के बाद मिलनेवाली मुक्ति। **आगे आप खुदा०**—सृष्टि में मनुष्य को ईश्वर ही कहा जाता है, बाद में तो वह अपना प्रेम अनन्त आत्मा के प्रति अर्पित करके स्वयं ही मनुष्य से ईश्वर बन जाता है। **सन जोड़े सन कपड़े थे०**—जिस प्रकार एक एक धागे के ताने-बाने से कपड़ा तैयार हो जाता है वैसे ही व्यक्तिगत आत्माओं का सामूहिक रूप

ईश्वर है इसलिए जो मूर्ख नहीं है, जाननेवाले हैं, उनके लिए ईश्वर ही अपना अभीष्ट सौदा (खरीदने की वस्तु) है। चण्डोलों—गप की बातें। दलील—तर्क।

आचरण की सभ्यता

ज्योतिष्मती—प्रकाशवाली। उन्मदिष्णु—पागल, मतवाला। अद्भुत-पूर्व—अद्भुत। अंजील—ईसाइयों का धर्मग्रन्थ। रामरौला—व्यर्थ में चिल्लाना। रसूल—मुहम्मद साहब की उपाधि, मार्गदर्शक। बे-सरो-सामान—बिना आवश्यक सामग्री। रोम—यूरोप का प्राचीन समृद्ध नगर। सेहरा—दूल्हा के सिर पर बाँधा जानेवाला कागज और गोटा आदि का बना हुआ मुकुट। रेडियम—एक मूल्यवान धातु। अन्तर्वर्तिनी—भीतर रहनेवाली। नेती—आँत। हाफिज—वह मुसलमान जिसे कुरान कंठस्थ हो। शीराजी—फारस में स्थित शीराज नगर का। मोमिन—इस्लाम और खुदा पर विश्वास रखनेवाला धर्मनिष्ठ मुसलमान। काफिर—इस्लाम के मत में नास्तिक। गजर—जगाने का घंटा। त्रिपीठक—बौद्धों का त्रिपिटक धर्मग्रन्थ।

मजदूरी और प्रेम

लावण्यमय—सौन्दर्य से भरा हुआ। इस दारे फ़ानी में—नश्वर संसार में। किसी के घर दर में न०—इस नश्वर संसार में किसी के विश्वास पर भरोसा कर के मत बैठो। उस बेठिकानेवाले ईश्वर को ही अपना ठिकाना तथा उस बिना मकानवाले ईश्वर को ही अपना मकान समझो, समस्त सृष्टि ही जिसका स्थान और घर है। अश्कों—आँसुओं। हुए थे आँखों के कल इशारे०—कल आँखों के इशारे के माध्यम से हमारे और तुम्हारे दोनों के क्या ही अद्भुत प्रेमालाप हुए थे और दोनों ओर आँसुओं की धारा बह चली थी। जो खुदा को देखना हो तो०—जो ईश्वर का रूपदर्शन करना होता है तो मैं तुमको देखता हूँ और जो

तुमको देखता हूँ तो उस देखने में ईश्वर का दर्शन होने लगता है क्या कि तुम्हारी छवि में ईश्वर का सही रूप दिखायी पड़ता है। मयस्सर—प्राप्त होना। नभोलालिमा—सूर्योदय के पहले उषःकाल की लाली। समष्टि-रूप—सामूहिक सम्पत्ति या सत्ता। व्यष्टिरूप—अलग-अलग होने का भाव। नौरूसी—बाप-दादों की छोड़ी हुई परम्परागत जायदाद। अन्ततः—वास्तव में। अन्योन्याश्रय—एक दूसरे पर अवलम्बित कार्य-कारण सम्बन्ध। जोन ऑव आर्क—फ्रांस की एक वीरांगना। टालस्टाय—रूस का महान् लेखक। उमर खैयाम—फारस का प्रसिद्ध कवि। खलीफा उमर—अरब के एक खलीफा (धर्माचार्य)। लोकान्तर—दूसरे लोक। निर्वाणसुख—मोक्ष का आनन्द। रस्किन—अंग्रेजी का प्रसिद्ध लेखक। विसर्दिल—पिस जाना या रौंद जाना। है रीत आशकों की०—प्रेमियों की यह रीति है कि वे अपने प्रिय के लिए शरीर और मन निछावर कर देते हैं, रोते है, अनेक कष्ट उठाते हैं और इस प्रकार उसे प्यार करते हैं।

अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट ह्विटमैन

शिवशङ्करी—भगवान् शङ्कर की मूर्ति के समान गोल गोल पत्थर। चंचरीक—भ्रमर। भ्रमरवत्—भौंरे के समान। डिलिया—मिट्टी की बनी हुई मटकी। शाहदौला—बादशाह। पोरियाँ—बाँस आदि के दो गाँठों के बीच का भाग। कलदार-सभ्यता—रुपयों के बल तड़क-भड़क से प्रकट होनेवाली सभ्यता। ब्रह्मनिष्ठ—परमेश्वर के चिन्तन में डूबा हुआ। तरजुमा—भाषान्तर, उल्था। बादबां—जहाज का पाल। न्यागरा—सर्वोत्तम सौन्दर्य-पूर्ण दृश्यवाला अमेरिका का एक झरना।



ये निबन्ध

•

"उनमें (अध्यापक पूर्णसिंह के निबन्धों में) विचारों और भावों को एक अनूठे ढङ्ग से मिश्रित करने वाली एक नई शैली मिलती है। उनकी लाक्षणिकता हिन्दी गद्य-साहित्य में एक नई चीज थी .... भाषा और भाव की एक नई विभूति उन्होंने सामने रखी।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

•

"सरदार पूर्णसिंह के लिखे पाँच हिन्दी लेखों का पता अब तक चला है।......................... इन लेखों की शैली भाव-प्रधान है। इनमें लाक्षणिकता के द्वारा उनकी भाषा की शक्ति और भावों की विभूति की अत्यन्त मनोहर छटा दीख पड़ती है। इस नयी शैली के प्रवर्तक प्रोफेसर पूर्णसिंह थे। अभी तक उनकी समकक्षता करने की और किसी की वृत्ति नहीं देख पड़ती। ....हिन्दी-निबन्धों में वे एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।"

डा० श्यामसुन्दर दास

•